जनवरी-जून 2012

वर्ष-44 अंक-1-2

मूल्य
₹ 20

वैज्ञानिक

हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद की पत्रिका
भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र के सौजन्य से प्रकाशित

भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र में विकसित द्रुत न्यूट्रॉन सुविधा

रचनाएं आमंत्रित

'वैज्ञानिक' हेतु लेख भेजते समय कृपया निम्न बातें ध्यान में रखें :

- लेख का विषय नया हो जो पाठकों में अधिक ज्ञान प्राप्त करने की जिज्ञासा बढ़ाये
- लेख मौलिक, अप्रकाशित तथा पठनीय हो, साथ ही साथ भाषा सरल, बोधगम्य और रूचकर हो।
- नव लेखन को प्रोत्साहित करने के लिए युवा एवं नव लेखकों की रचनाओं पर विशेष ध्यान दिया जायेगा तथा उन्हें वरियता प्रदान की जायेगी।
- कृपया अनुवादित लेख न भेजें।
- लेख टंकित किया हुआ अथवा स्पष्ट हस्तलिपि में दोनों ओर पर्याप्त हाशिया छोड़ कर कागज के एक ओर ही लिखें।
- विषय वस्तु समझने के लिए यदि चित्र आवश्यक हों तो उन्हें अलग से सफेद कागज पर काली रोशनाई से खींच कर लेख के अंत में संलग्न कर दें।
- अस्वीकृत रचनाएं डाक-टिकट लगा लिफाफा संलग्न होने पर ही वापस की जायेंगी।
- पत्रिका को अधिकाधिक रूचिकर एवं उपयोगी बनाने के लिए आप सभी सुधी पाठकों के सुझावों का स्वागत है।
- पत्रिका में वैज्ञानिक विषयों पर लिखी गई पुस्तकों की समीक्षा हेतु पुस्तक की कम से कम एक प्रति अवश्य भेजी जानी चाहिये।

"रचनाएं भेजने का पता"

श्री जयप्रकाश त्रिपाठी,
पी.पी.,एफ.आर.डी.(F.R.D.),
भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र,
मुंबई-400 085
E-mail : jtripath@barc.gov.in

डॉ.जगदीश चंद्र व्यास,
टी.पी.डी.(T.P.D.),
भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र,
मुंबई-400 085
E-mail :j.c.vyas@gmail.com

वैज्ञानिक

वर्ष - 44 अंक - 1/2

जनवरी-जून 2012

♦ संपादन मंडल ♦

डॉ.जगदीश चंद्र व्यास
(संयोजक)
श्री जयप्रकाश त्रिपाठी
श्री कुलवंत सिंह
श्री कवींद्र पाठक
श्री. प्रवीण दुबे

♦ व्यवस्थापन मंडल ♦

श्री विपुल सेन
(संयोजक)
श्री पी.एम.गांधी
श्री डी.एन.सिंह
श्री संजय गोस्वामी
श्री.राजेश कुमार मिश्र
श्री राजेश कुमार

सदस्यता शुल्क

आजीवन

व्यक्तिगत	संस्थागत
400 रु.	1000 रू.

वार्षिक

व्यक्तिगत	संस्थागत
50 रु.	100 रू.

कार्यालय

'वैज्ञानिक', हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद,
सूचना प्रभाग, सेंट्रल कांप्लेक्स,
भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र,
मुंबई-400 085

सभी पद अवैतनिक हैं

अ नु क्र म णि का

संपादकीय -3

लेख

1. शहरों के जलीय पर्यावरण में भारी धात्विक तत्व लेड (II) का खतरनाक स्तर
   - डॉ. अचिन्त्य एवं डॉ.सुरेश कुमार - 5
2. भारत में गिद्धों का संरक्षण
   - मोहिनी सैनी, शैली पाण्डेय, अति दास एवं अनिल कुमार शर्मा - 8
3. शैवालों से जैव-ईंधन
   - डॉ.दिनेश मणि -12
4. भास्कराचार्य (द्वितीय) : मूर्धन्य गणितज्ञ एवं खगोलशास्त्री
   - डॉ.जगदीश चन्द्र व्यास - 15
5. वैश्विक जलवायु परिवर्तन तथा संभावित दुष्प्रभाव
   - डॉ. अरविंद सिंह - 19
6. नाभिकीय ऊर्जा की अपरिहार्यता - 25

टिप्पणी

1. क्यों आता है बुढ़ापा? - 29
   - डा.विजय कुमार उपाध्याय
2. सेहत के लिए वरदान है अदरक - 30
   - अनिल कुमार
3. मरू क्षेत्र की महत्वपूर्ण औषधीय वनस्पतियां - 33
   - डॉ.नवीन कुमार बोहरा
4. रतनजोत का अंधाधुन्ध रोपण
   - डॉ.अरविंद सिंह -36
5. आधुनिक स्वास्थ्य-सेवा और पारंपरिक चिकित्सा-पद्धतियां
   -संजय चौधरी - 39

विज्ञान समाचार

1. सुदूर हस्तन एवं रोबोटिका
   (साभार : बी.ए.आर.सी.न्यूजलेटर) - 44
2. मोटे लोगों के लिए ओजोन ज्यादा खतरनाक
   संकलन एवं प्रस्तुति - संजय गोस्वामी - 45

बुद्धि कौशल्य (2) - 47

बुद्धि कौशल्य (1) कुछ प्रश्नों के समाधान - 48

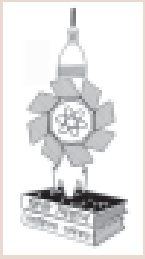

आवरण पृष्ठ का संक्षिप्त विवरण

भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र में विकसित द्रुत न्यूट्रॉन सुविधा

द्रुत गति न्यूट्रॉन बीम सुविधा के उपयोग पदार्थों के अविनाशी परीक्षण, जैसे, धातुओं के वेल्ड की जांच (जो एक्सरे इमेजिंग के समान किंतु हल्के तत्वों के जांच के लिए संवेदनशील), कार्गो एवं हवाई अड्डों में उपयोग होनेवाली सामग्री के सूक्ष्म निरीक्षण, तथा यात्रियों के सामान की जांच इत्यादि क्षेत्रों में है. त्वरक संचालित अपक्रांतिक रिएक्टर (एडीएस) के विकास एवं अनुसंधान हेतू भी यह एक महत्वपूर्ण सुविधा/यंत्र है, और परमाणु ऊर्जा के क्षेत्र में उच्च त्वरक कार्यक्रम का एक भाग है. इसके अलावा उच्च शक्ति के त्वरक का उपयोग परमाणु विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में भी किया जाता है. दुनिया भर में इस तरह के त्वरक पर अनुसंधान, उच्च ऊर्जा/धारा की बीम प्राप्त करने के लिए एवं उपयुक्त घटक प्रणालियों के विकास हेतु जोरों पर है.यह सुविधा फास्ट ब्रीडर रिएक्टर के प्रयोग के लिए महत्वपूर्ण है. साथ ही साथ नवीन तेल भंडारों का पता लगाने के लिए भी न्यूट्रॉन जनरेटर का उपयोग होता है.

इस सुविधा के महत्वपूर्ण घटक है.

1. ट्रीशियम लक्ष्य
2. टर्बो आण्विक पंप
3. बीम परिचालक
4. उच्च वोल्टेज बिजली की आपूर्ति
5. त्वरकनलिका
6. आयन स्रोत डोम
7. फैराडे इलेक्ट्रॉड

इस प्रयुक्ति के द्वारा निर्मित न्यूट्रॉन बीम की ऊर्जा 14 MeV है. वर्तमान बीम प्रणाली में 10^8-10^9 न्यूट्रॉन प्रति सेकंड की उपलब्धि होती है. लक्ष्य ट्रीशियम, बीम करंट (ड्यूट्रॉन) - 250 माइक्रोएम्पीयर, ऊर्जा 300 keV. तरल नाइट्रोजन द्वारा ठंडी की गयी ट्रीशियम गैस को नलिका से प्रवाहित किया जाता है. द्रुत गति न्यूट्रॉन बीम के उत्पादन हेतू ट्रीशियम (T) को संलयन की क्रिया हेतू चेंबर में लाया जाता है, जहां टर्बो आण्विक पंप की सहायता से आंशिक निर्वात रखा जाता है. न्यूट्रॉनों के उत्पादन के लिए आयनित कण की गतिज ऊर्जा को इतना बढ़ाया जाता है कि वे कूलॉम प्रतिकर्षक बल को पार कर सीमित स्तर पर नाभिकीय क्रिया प्रारंभ कर सकें, जो की उच्च तापक्रम (ऊर्जा) पर ही संभव है. इस हेतू एक निर्वात नलिका, इलेक्ट्रॉड और एक उच्च वोल्टेज ट्रांसफार्मर लिया जाता है. संगलन इलेक्ट्रोड (फैराडे इलेक्ट्रोड) के बीच कम से कम 300kV के विभवान्तर के साथ उच्च धारा बीम प्रेरित किया जाता है. त्वरक आधारित शीत संलयन (Cold Fusion) के साथ प्रमुख समस्या यह है कि संलयन को शुरु करने हेतु कूलॉम प्रतिकर्षण बल को पार करते वक्त आयन के विशाल समूह साधारण दाब पर अन्य अणुओं से टकराकर अथवा ब्रमस्तहलंग (कम बंधन ऊर्जा के इलेक्ट्रॉनों द्वारा निर्मित एक्सरे विकीरण) तथा लक्ष्य परमाणुओं के आयनीकरण के कारण अपनी ऊर्जा खो देते हैं. इस समस्या से निपटने के लिए इन उपकरणों को टर्बो आण्विक पंप से जोड़ा गया है. उपकरण के रूप में यह सुविधा नाभिकीय विज्ञान में मील के पत्थर के समान है.

-संपादक

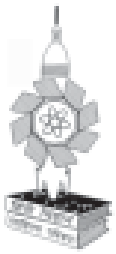

संपादकीय

वैज्ञानिक एवं तकनीकी जानकारी

विज्ञान और प्रौद्योगिकी के उपयोग से विभिन्न क्षेत्रों में आयी प्रगति ने औसत मानव जीवन का स्तर समय के साथ लगातार बढ़ाने का श्रेष्ठ कार्य किया है, और हम आशा करते हैं कि यह प्रयत्न आगे भी इन क्षेत्रों में चल रहे अनुसंधानों के द्वारा अधिक उत्तम एवं सार्वदेशिक रूप से अधिकाधिक लोगों को लाभ पहुंचाने के लिए होता रहेगा. हमें पता है कि ऐतिहासिक काल में औसत मानव को अति कठिन परिस्थितियों से जूझते हुए जीवन चलाना पड़ता था. ज्यादा नहीं, वर्तमान से केवल 200 से 250 वर्ष पूर्व का ही मानव समाज किन-किन विषम परिस्थितियों से लड़ रहा था, इसका वर्णन ही वर्तमान पीढ़ी के रोंगटे खड़े कर सकता है. उदाहरणार्थ, तत्कालीन समाज रात्रि के अंधेरे को मिटाने के लिये प्राकृतिक तेल के दीपक उपयोग करता था, जिनसे निकली सीमित तीव्रता की रोशनी आज के विद्युतीय बल्बों या फ्लोरेसेंट ट्यूब से आती रोशनी के सामने नगण्य सी थी. उस समय आवागमन के साधन घोड़ा-गाड़ी या अन्य पशुबल चालित वाहनों तक सीमित थे, और ये सुविधाएं भी केवल संपन्न व्यक्तियों की पहुंच में होने से साधारण लोगों के लिए उपलब्ध नहीं थी. इसलिए अधिकतर लोग पैदल यात्राओं से ही अपना काम चलाते थे और दूरस्थ स्थानों तक आना जाना कठिन एवं दुष्कर कार्य हुआ करता था. सूचना व संप्रेषण की समुचित व्यवस्था के अभाव में इस प्रकार की यात्राएं असुरक्षा के संकटों से भी घिरी होती थी. भोजन आदि पकाने के साधन सीमित थे. जंगली लकड़ियां या पालतू जानवरों के गोबर से बने सूखे उपलों से यह काम अधिकतर जगहों पर होता था. जनबल या पालतू पशुबल द्वारा उपलब्ध ऊर्जा से ज्यादातर कामों को निपटाया जाता था. संचार के माध्यम भी कुछ विशेष व्यक्तियों की पहुंच में ही थे और जो साधन उपलब्ध थे, वे भी धीमी गति से सीमित मात्रा में ही सूचना संप्रेषण कर पाते थे. लगभग यही स्थिति औषधि उत्पादन या रोग निदान संबंधी सुविधाओं के बारे में भी थी. अधिकतर लोग अनेक प्रकार की असाध्य बीमारियों से अल्पायु में ही काल-कवलित हो जाते थे, और जो थोड़े-बहुत तत्कालीन चिकित्सीय उपाय उपलब्ध थे, उनका लाभ भी बहुत कम लोग ही उठा पाते थे.

विकास की गति और विस्तार को तेजी देने वाले साधन केवल वैज्ञानिक व तकनीकी साधनों के सामंजस्य वाली सोच और उससे निर्मित विभिन्न प्रकार के संसाधनों द्वारा ही समय के साथ क्रमशः बढ़े, यथा भाप (स्टीम) के प्रयोग से इंजन चलाने के साथ मशीनीकरण प्रारंभ हुआ, जिससे औद्योगिक क्षमताओं में तेजी से विकास प्रारंभ हुआ, जो अंतर्दहन इंजनों के आने से और तेजी से बढ़ा. इसके बाद विद्युत क्षेत्र में आई प्रगति ने तो लगभग सभी क्षेत्रों को असाधारण गति देकर आगे बढ़ाया, और लगभग 200 वर्षों की वैज्ञानिक एवं तकनीकी उपलब्धियों ने पूर्वकाल के संकटों से मानव जीवन को निकालकर एक नए युग में लाकर खड़ा कर दिया. अन्यान्य ऊर्जा स्वरूपों के साथ-साथ वर्तमान में लगभग हर कार्य में विद्युत-ऊर्जा के उपयोग से उद्योगों में गति और कार्य के स्तर या दक्षता में आशातीत सफलता मिली है. विद्युत ऊर्जा ने क्रियाओं के परिष्करण के अलावा उनके बेहतर नियंत्रण में भी इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों के माध्यम से महत्वपूर्ण सहायता पहुँचाई है.

परिणामतः वर्तमान में आवागमन, रोशनी, पदार्थ निर्माण, धातु निर्माण, पदार्थ प्रसंस्करण, इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों का निर्माण एवं उनके द्वारा संवाद या चित्रादि का भंडारण व संचारण, कम्प्यूटरीकरण, मनोरंजन के अन्यान्य साधन एवं उपकरण, औषधीय पदार्थ निर्माण एवं नैदानिक उपकरणों का विकास एवं निर्माण इत्यादि विभिन्न क्षेत्रों में कल्पनातीत प्रगति आई है, जो केवल विज्ञान एवं तकनीकी के क्षेत्र में किए गए मूलभूत अनुसंधानों और उनके द्वारा निर्मित तकनीकी उपकरणों के निर्माण से ही संभव हुई है.

यह ठीक है कि इसके पीछे मानव मस्तिष्क और उसकी क्षमताओं का साझा दर्शन है, किन्तु जिस मात्रा में ये संसाधन लोगों तक पहुंच रहे हैं, उसी मात्रा या अनुपात में औसत व्यक्ति की समझ को आगे बढ़ाए बिना इन संसाधनों

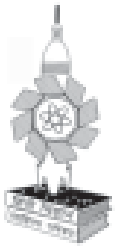

के समुचित उपयोग संभव नहीं है, बल्कि आशंका यह भी होती है कि सही जानकारियों के समुचित प्रचार एवं प्रसार के अभाव में कुछ विशिष्ट वर्ग या वर्गों द्वारा इन संसाधनों का अन्यान्य लोगों पर अपने निजी लाभ अथवा असामाजिक इच्छा पूर्तियों के लिए दुरूपयोग भी किया जा सकता है, जिसमें बड़े पैमाने पर जन हानि होने की संभावना भी सम्मिलित है. इसका प्रत्यक्ष उदाहरण आतंकवादी गतिविधियां है, जो नवीनतम अस्त्र-शस्त्रों या इसी प्रकार के जन-मानस को डराने वाले अन्य संबंधित साधनों की सहायता से विश्व के लगभग हर कोने में किसी न किसी रूप में संचालित हो रही है और भारत को तो अनचाहे ही इनका बार-बार शिकार बनना पड़ रहा है.

अतः आवश्यक है कि औसत समाज की ज्ञान-विज्ञान और तकनीकी उपकरणों की समझ को बढ़ाने के कारगर उपाय तेजी से भारत में शुरु किए जाएं. यह समझ एक ओर तो इन जानकारियों के विस्तार से औसत नागरिकों की सोच को नई दिशा देगी, वहीं दूसरी ओर इन कार्यों में सहकारी या योगदान देने लायक नए लोगों की संख्या को बढ़ाने में भी सहायता प्रदान करेगी. परिणामतः हम और अधिक तेजी से विकास की गति को बढ़ाकर सर्वसामान्य व्यक्ति का जीवन सुखमय करने की स्थिति को यथाशीघ्र पा सकेंगे.

हम शायद अपेक्षा करते होंगे कि यह परिचय तो स्कूल, कालेज या विश्वविद्यालयों के माध्यम से हो जाना चाहिए. किन्तु प्रत्यक्ष अनुभव दर्शाते हैं कि केवल इन संस्थानों के द्वारा यह कार्य संभव नहीं लगता. वैसे भी भारतीय परिवेश का सामान्य व्यक्ति शिक्षा संस्थानों से जुड़ा हुआ नहीं रहता है. सच तो यह है कि आज भी अधिकांश भारतवासी विश्वविद्यालय के दरवाजों के बाहर रहकर ही अपना जीवन पूरा कर लेते है और यह संख्या हमारी आबादी का लगभग 70 से 80 प्रतिशत भाग है. अतः आवश्यकता इस बात की है कि विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी से निर्मित संसाधनों का परिचय इन लोगों के पास पहुंचाने की अलग से कोई व्यवस्था हो, जो समझने लायक भाषा में इसे जनमानस तक पहुंचा सके. इस प्रकार के परिचयात्मक प्रबोधनों में स्थानीय बोलियों या भाषा के माध्यम का उपयोग हो, तभी ज्यादातर लोग इनका लाभ उठा सकेंगे और प्रभाव भी अधिक गहराई वाला होगा. स्थानीय भाषा सर्वाधिक क्षमता से यह कार्य कर सकती है. खेद की बात यह है कि आज भारत में सौ से अधिक टीवी चैनल दिनरात प्रसारण तो कर रहे हैं और अधिकतर गांवों तक टीवी पहुंच भी रहा है, किन्तु इन प्रसारणों में विज्ञान या प्रौद्योगिकी संबंधी जानकारी देने वाले प्रामाणिक कार्यक्रमों का नितांत अभाव रहता है, जबकि ये चैनल अति प्रभावी रूप से इस दिशा में अपना योगदान दे सकते है. ध्यान रहे टीवी इत्यादि माध्यम विज्ञान व तकनीकी क्षेत्र की ही देन है, और यह एक प्रभावी माध्यम भी है. पर यहां उपकरण का कोई दोष नहीं बल्कि यह तो इसके उपयोग करनेवाले पर निर्भर क़रता है कि वह इससे किस प्रकार के लाभ लेना चाहता है. अतः सामाजिक लाभों को ध्यान में रखकर हमें ही समझना होगा की हम इन साधनों का उपयोग किस प्रकार से करें.

स्मरण रहे कि इस प्रकार के प्रबोधनों के अभाव में वैज्ञानिक एवं तकनीकी संसाधनों की अपूर्ण जानकारी व्यक्तिगत व सार्वजनिक रूप से कठिनाइयां उपस्थित कर सकती हैं. उदाहरणार्थ, पानी में गिरे हुए खुले उच्च वोल्टीय तार से उस पानी को छूने वाले व्यक्ति को झटका लग सकता है या उसकी मृत्यु भी हो सकती है और उसे बचाने वाला व्यक्ति भी अपूर्ण जानकारी होने पर इसका शिकार बन सकता है. घरों में गैस के चूल्हों पर कार्य करनेवाली गृहणियों को यदि गैस संबंधित जानकारी ठीक से नहीं मिले तो वे भी कठिन स्थिति में आ सकती है, ऐसे ही हजारों उदाहरण हमारे सामने हैं जिनमें अपूर्ण या गलत जानकारी होने के कारण लोगों को अनचाहे संकटों से गुजरना पड़ सकता है.

सामाजिक संगठन या अन्य सामाजिक क्रिया कलाप भी इन प्रबोधनों में अपना अच्छा योगदान दे सकते हैं, बल्कि सामाजिक संगठनों में यदि वैज्ञानिक व तकनीकी समितियां भी किसी तरह प्रवेश पा सके तो इस प्रकार का परिवर्तन लंबे समय तक व निरंतर इस प्रबोधन की प्रक्रिया को चलाने में सक्षम बना रह सकता है. पाश्चिमात्य देशों में इस प्रकार की वैज्ञानिक या तकनीकी समितियां सक्रिय रहने से उनके औसत भौतिक जीवन स्तर में कल्पनातीत सुधार हुआ है.

भारतीय समाज में स्थानीय स्तर पर प्रांत जिला या तहसील (तालुका) स्तर तक इस प्रकार के प्रबोधन प्रारंभ हो तो यह इस विशाल राष्ट्र को फिर से जगाने का एक सुंदर तरीका बन सकता है.

विज्ञान और तकनीकी जानकारियों की औसत स्तर की पकड़ हर भारतीय तक जाना ही चाहिये. यह अति आवश्यक एवं महत्वपूर्ण कार्य हम अपने स्तर पर शुरु करेंगे तो हमारे वर्तमान और भविष्य में आने वाले समाज की प्रगति में हमारा भी महत्वपूर्ण योगदान हो सकता है.

-डॉ.जगदीश चंद्र व्यास

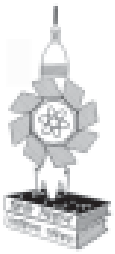

जलीय पर्यावरण में धात्विक तत्व लेड (II) का खतरनाक स्तर

- डॉ. अचिन्त्य -

प्राध्यापक, सिविल इंजिनीयरिंग विभाग, सह प्राचार्य, भागलपुर कॉलेज ऑफ इंजिनीयरिंग, पोस्ट - सबौर, भागलपुर - 813210

- डॉ. सुरेश कुमार -

सह प्राध्यापक, सिविल इंजिनीयरिंग विभाग, मुजफ्फरपुर इंस्टि. ऑफ टेक्नालॉजी, पोस्ट-एम.आई.टी., मुजफ्फरपुर - 842003

शहर के जलीय पर्यावरण को तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है. यथा, शुद्ध जल जो उपभोक्ता को उनके दैनिक कार्यों हेतु दिया जाता है. दूसरा प्रयुक्त जल, जिसका निस्सारण उपभोक्ता उपभोग के उपरान्त नालियों के रास्ते करते हैं और तीसरा औद्योगिक इकाइयों से निस्सारित जल. इन सभी जल स्रोतों से उत्सर्जित जल अंततः शहर के प्राकृतिक जल निकायों से जाकर मिलते है. अतः इन स्रोतों में उपस्थित संभावित प्रदूषणकारी अवयवों का अध्ययन एवं निराकरण सामायिक है. जैसा कि विदित है, प्रयुक्त जल के प्रदूषण स्तर को जानने के लिए निलंबित ठोस-कण, बी.ओ.डी.(बायलॉजीकल ऑक्सीजन डिमांड) घुलित आक्सीजन, पी.एच., भारी धातु, आदि अवयवों का निर्धारण किया जाता है. वैसे तो सभी प्रदूषणकारी अवयवों का अपना दुष्प्रभाव है, पर शहरों के जलीय स्त्रोतों में हाल के दिनों में भारी धातुओं का पाया जाना चिंता का विषय है.

हमारे शोध - अध्ययन के दौरान जो कि मुजफ्फरपुर शहर के जलीय पर्यावरण से संबंधित था, यह पाया गया कि लेड (I) जो कि एक विशिष्ट और घातक भारी धातु है की मात्रा सभी नामित जल स्रोतों में ऊंचे स्तर तक पहुँच गई है - और किसी-किसी स्रोत में तो इसकी मात्रा खतरनाक स्तर तक पायी गयी है. विभिन्न प्रदूषणकारी अवयवों को संलग्न सारणी में दिखाया गया है. इन अवयवों की सान्द्रता के निर्धारण हेतु विभिन्न जल स्रोतों में से जलसैम्पल निर्धारित मानक विधि द्वारा एकत्रित किए गए. शुद्ध जल हेतु शहर के भूगर्भ जल स्रोत, यथा नलकूप एवं बोरिंग दोनों एम.आई.टी.परिसर स्थित, एवं विभक्त-जल हेतु मुख्य नालों एवं बैटरी निर्माण की औद्योगिक इकाई से प्रवाहित जल स्रोतों को चुना गया. इनके साथ ही गंडक नदी के जल के सैम्पल विभिन्न ऋतुओं में एकत्रित किये गये और उनका विश्लेषण किया गया.

लेड (II) - एक घातक और खतरनाक भारी धातु :

स्रोत : लेड (जिसकी रासायनिक संयोजकता दो है और लेड को ही सीसा भी कहते है) प्रकृति में प्रचूर मात्रा में पाया जाने वाला तत्व है. रासायनिक तत्व सारिणी (पीरिऑडिक टेबुल) के भारी धातुओं में शामिल यह एक ऐसा तत्व है जो जीवन के लिए आवश्यक नहीं है और जिसका किसी भी अवस्था में, तथा किसी भी मात्रा में शरीर में उपलब्ध होना दुष्प्रभावी है. पर्यावरण में मुख्यत यह प्राकृतिक रासायनिक क्रियाओं एवं मानव जनित क्रिया कलापों से संचयित होता है. वायुमंडल में इसकी मौजूदगी अन्य भारी तत्वों की तुलना में ज्यादा है. मुख्यतः लेड-युक्त पेट्रोल एवं गैसोलीन के ज्वलन से यह धातु वायुमंडल में पहुंचता है जहां से वर्षा के जल द्वारा बहकर यह धरातल में जमा होता है. लेड-युक्त औद्योगिक कचरों का बिना शोधन किये फेंका जाना इसका दूसरा मुख्य स्रोत है. इन दोनों के चलते लेड का स्तर मिट्टी और भूगर्भ-जल के साथ तालाबों, नदियों में भी बढ़ता जा रहा है.

मानक मात्रा

विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा प्रदत्त मानक में लेड (I) की जल में अधिकतम मात्रा 0.05 मि.ग्रा. प्रति लीटर है. जबकि यह अनुशंसा की गई है कि इसका जल में मौजूद न होना ज्यादा बेहतर है. अपने देश के संदर्भ में भी भारतीय मानक ब्यूरो द्वारा इस धातु की अधिकतम मात्रा 0.05 मि.ग्रा. प्रति लीटर ही निर्धारित है.

भारतीय महानगरों की व्यस्त सड़कों के धूलकणों में इन धातु कणों का स्तर 1000 से 4000 माइक्रो ग्रा./कि.ग्रा. है, जो कि विभिन्न शारीरिक जैव क्रियाओं द्वारा शरीर के तंतुओं एवं कोशिकाओं में संचित होते रहते हैं. बड़े औद्योगिक ईकाइंयों से प्रवाहित प्रयुक्त जल में इनकी मात्रा 2.0 से 5.0 मि.ग्रा./लीटर पाई गई है, जबकि सीवेज में इनका मानकीकृत अधिकतम निर्धारित स्तर 0.1 मि.ग्रा./लीटर किया हुआ है.

लेड एक अति जीव घातक प्रभाववाला भारी धातु है जो मुख्यतः शरीर के नस-समूहों में तेजी से संचित होकर उनपर खतरनाक प्रभाव डालता है. यह खाद्य-श्रृंखला में एकत्रित होता रहता है. जिसका जैविक-विघटन (बायोडिग्रेडेशन) नहीं होता है. यह एक कैंसरकारी धातु है जिसका शरीर में किसी भी मात्रा में मौजूदगी शरीर के लिए अत्यन्त हानिकारक है.

धरातलीय जल, में इसकी मौजूदगी से सर्वाधिक छोटे जलीय जीव प्रभावित होते है. इस धातु की 0.1 मि.ग्रा./लीटर मात्रा जल में उपस्थित मछलियों एवं संबंधित संवर्ग के प्राणियों के लिए घातक (टॉक्सिक) है. सूक्ष्म जीवों पर भी इसका दुष्प्रभाव है. मुख्यतः प्रोटोजोआ, वाटरफॉली वर्म आदि पर इसके दुष्प्रभावों का अध्ययन किया गया है.

मनुष्यों में इसकी मौजूदगी खाद्य-पदार्थों के जरिए है. इसकी औसतन मात्रा 200-300 माइक्रोग्राम प्रति मनुष्य प्रति दिन है. जबकि वायु एवं जल के रास्ते से मनुष्य में अतिरिक्त 25 माइक्रोग्राम प्रति दिन इसका संचयन भी होता है. मल-मूत्र के रास्ते संचयित लेड का करीब 75 प्रतिशत भाग बाहर निकल जाता है, जबकि शेष भाग हड्डियों एवं नसों में एकत्रित होता रहता है.

इसका मुख्य जैव-रासायनिक प्रभाव इसके शरीर स्थित हेमोन्थिसिस प्रक्रिया में दखलंदाजी के चलते होता है.

स्रोत	लेड (I) मि.ग्रा./ली.	सल्फेट आयन मि.ग्रा./ली.	पी.एच.
भूगर्भ जल बोरिंग से	0.11	49	6.7
ट्यूबवेल	0.125	45	6.9
गंडक नदी (विभिन्न बिन्दू)			
शहर का मुख्य सीवर	2 से 4.89	420	6.5
आउटफॉल नाला (विभिन्न स्टेज)	6.285 से 9.25	105	5.5
स्टोरेज बैटरी (उद्योग स्रोत विभिन्न स्टेज)	1.175 से 5.01	413	2.4

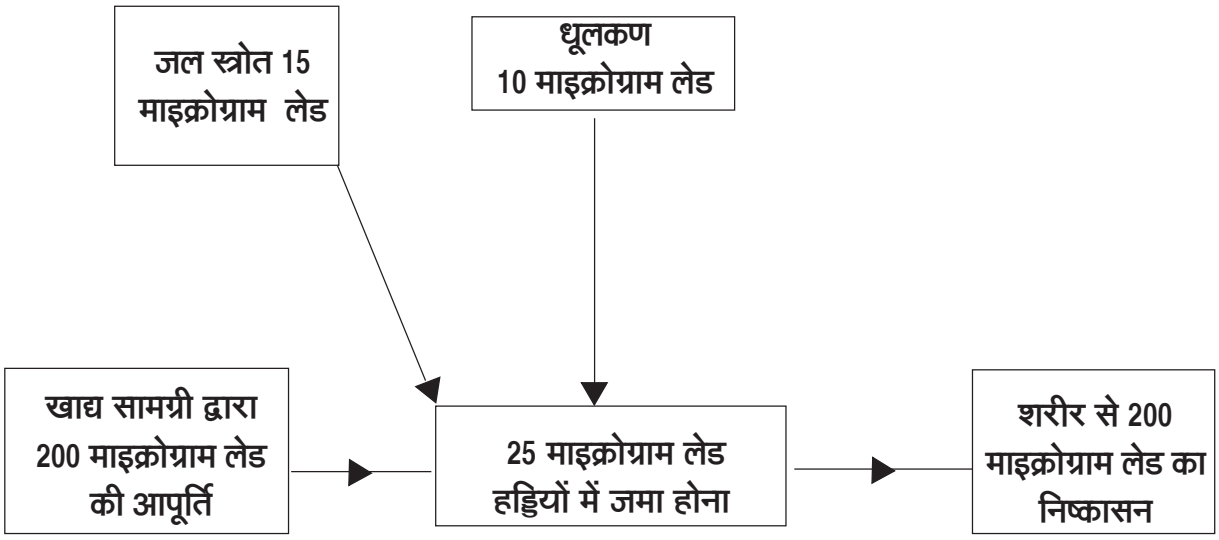

चित्र - 1 : औसत मनुष्य जीवन का दैनिक लेड संतुलन

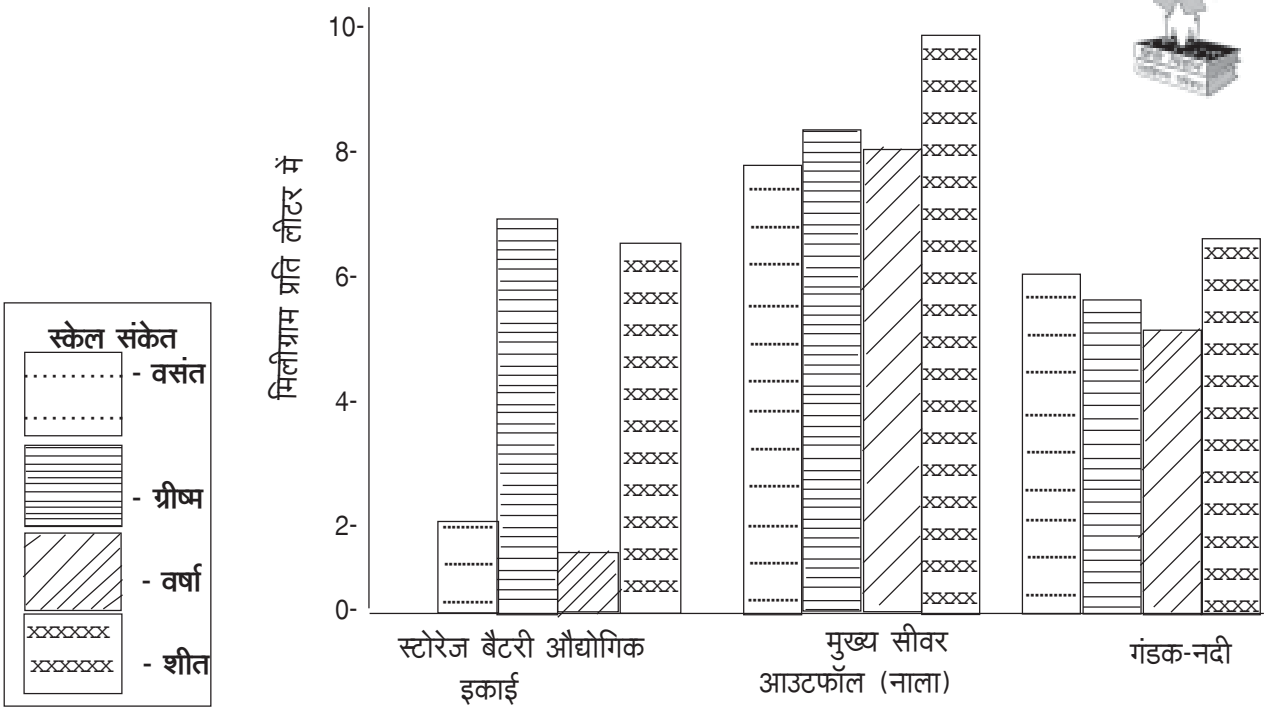

चित्र-2 : मुजफ्फरपुर के जल स्रोतों से नाले में ऋतु चक्रानुसार लेड (I) की मात्रा

परिणामस्वरूप हेमोग्लोबिन के क्षय के चलते शरीर रतजल्यता का शिकार हो जाता है. इसकी मात्रा और बढ़ने पर यह तत्व मनुष्य के शरीर की किडनी को क्षतिग्रस्त करता है और अन्ततः मस्तिष्क को निष्प्रभावी कर सकता है.

बच्चों में इसकी मौजूदगी से उनका मानसिक विकास बाधित होता है और बच्चे मेंटली रिटार्डेड हो जाते हैं. आगे चलकर उन बच्चों में कल्वल्सन की बीमारी जन्म लेती है. इस धातु के घातक एवं विनाशकारी प्रभाव के चलते ही इससे निर्मित सामग्रियों, यथा लेडपाईप, लेड पेन्ट का निर्माण एवं उपयोग कम से कम होने लगा है. साथ ही लेड युक्त पेट्रोल/गैसोलीन के इस्तेमाल पर भी सरकार ने रोक लगा रखी है. लेड के प्रभाव को एक शहरी नागरिक पर 'दैनिक लेड संतुलन' के जरिये (चित्र-1) से समझा जा सकता है.

मानक सैम्पल जो एकत्रित किये गये उनमें मौजूद लेड (I) एवं अन्य अवयवों की उपस्थिति टेबल में दर्शायी गयी है. विदित हो कि जल में लेड (I) की अधिकतम घोषित मात्रा 0.05 मि.ग्रा./लीटर है. जबकि इस्तेमाल के पश्चात प्रवाहित जल में अधिकतम सीमा 0.1 मि.ग्रा./लीटर है.

ऊपर के विवरण से स्पष्ट है कि मुजफ्फरपुर-वासी लेड (I) युक्त खतरनाक एवं घातक प्रभाव वाले जल के पर्यावरण में रह रहे है. नालों में प्रवाहित शहरजनित सीवेज एवं औद्योगिक सीवेज का परिष्करण के पश्चात ही आगे निस्सारण होना अत्यावश्यक है. क्योंकि इस धातु की मात्रा किसी भी प्राकृतिक जल स्रोत को प्रदूषित करने में पर्याप्त है. इस धातु के भूगर्भ जल में 0.11 मि.ग्रा./लीटर मौजूदगी से यह दुखद स्थिति और भी भयावह दिखाई पड़ती है. अतः पेय जल को भी परिष्करण के पश्चात ही उपयोग में लाने के लिए वितरण किया जाना आवश्यक है. साथ ही सल्फेट की मौजूदगी लेड कॉम्पलेक्स (योगिक) के निर्माण में सहायक है. ये सब अलग-अलग बिंदू मिलकर शहर के नागरिक पर्यावरण की ओर खतरनाक इशारा कर रहे हैं.

ऊपर दर्शाये गये चित्र-2 में मुजफ्फरपुर शहर के जल स्त्रोतों एवं सीवर लाईन से जलसैम्पलों को विभिन्न ऋतुओं, यथा वसंत, गर्मी, वर्षा एवं शीत में एकत्रित किया गया. इन सभी सैम्पल के विश्लेषण से जो निष्कर्ष रूप में लेड (I) की मात्रा पाई गई. वह इसी चित्र में प्रदर्शित है.

उपसंहार : निष्कर्षतः शहर के नागरिकों एवं अन्य जीवों पर लेड (I) की घातक उपस्थिति निश्चय ही चिंताजनक है. शहर के नागरिक स्वास्थ्य पर्यावरण के विशेष अध्ययन से इसके दूष्प्रभाव की तीव्रता का आकलन किया जा सकता है. सावधानी के तौर पर शहर के सभी जल-उद्भेदन पम्प हाउसों पर भारी धातु से निजात दिलाने वाले जल शोधन संयंत्रों की स्थापना अनिवार्य है. साथ ही जिले के धरातलीय जल स्रोतों की सुरक्षा हेतु मुख्य आउटफॉल सीवर पर भी सीवेज जल शोधन संयंत्र लगाना उचित होगा ताकि यह जल शोधन के बाद ही पर्यावरण में प्रवाहित हो.

भारत में गिद्धों का संरक्षण

- मोहिनी सैनी, शैली पाण्डेय, अति दास एवं अनिल कुमार शर्मा -

वन्यजीव संरक्षण, प्रबंधन और रोग निगरानी केन्द्र, भारतीय पशु चिकित्सा अनुसंधान संस्थान, इज्जतनगर बरेली 243122 (उ.प्र.)

भारत जैवविविधताओं से परिपूर्ण देश है, जहां पूरे विश्व का 8% जैवविविधता वाला भाग मौजूद है सभी प्राणी एक दूसरे से खाद्य श्रृंखला द्वारा संबंधित हैं. आज विश्व में कई जंगली प्रजातियों अस्तित्व के संकट का सामना कर रही हैं और कई विलुप्त होने की कगार पर है. इन सबके लिए अवैध शिकार, घटते वन्य क्षेत्र, घरेलू पशुओं द्वारा चराई और अवैध रूप से निर्यात जिम्मेदार हैं. इन सब में पक्षियों की घटती जनसंख्या सबसे ज्यादा चिंताजनक हैं क्योंकि पक्षी अनेक प्रकार की पारिस्थितिक सेवाएं प्रदान करते हैं. पक्षियों की एक पीडित जाति है गिद्ध, जिसे पूर्वकाल में जटायु के नाम से जाना जाता था. यद्यपि गिद्ध जाति अवैध शिकार के खतरों से बची रहती है तथापि परोक्ष रूप से मानव जाति के प्रकोप का भाजन होती हैं. गिद्ध एक मृतोपजीवी पक्षी है जो भोजन के लिए केवल मृत पशुओं के शरीर पर निर्भर रहता है. इस तरह से वह वातावरण के लिए कुशल एवं प्राकृतिक सफाईकर्मी का कार्य करता है. इनका पाचनतंत्र मजबूत होता है जिससे कि यह रोगाणुओं से परिपूर्ण सड़ा गला माँस भी पचा सकते हैं. इस प्रकार गिद्ध वास्तव में अनेक संक्रामक रोगों का विस्तार रोकते हैं.

भारत और दक्षिण पूर्वी एशिया के उपमहाद्वीपीय क्षेत्रों में पाए जाने वाले गिद्ध पुरानी दुनिया के गिद्ध हैं और ये पतंगे, हॉक और चील आदि से अपेक्षाकृत अधिक समीपवर्ती संबंध रखते हैं. भारत में नौ गिद्ध प्रजातियां पायी जाती है जिनके नाम व वर्तमान स्थिति निम्नानुसार है :-

आम नाम	जेनेरिक नाम	वर्तमान स्थिति
सफेद पीठ वाले गिद्ध	जिप्स बेन्गालेन्सिस	गंभीर संकटग्रस्त
बेलनाचुंच गिद्ध	जिप्स टन्यूरोस्टस्टरिस	गंभीर संकटग्रस्त
दीर्घचुंच गिद्ध	जिप्स इंडिकस	गंभीर संकटग्रस्त
राज गिद्ध	सारकोजिप्स काल्वस	गंभीर संकटग्रस्त
गोपर गिद्ध	नियोफरान पर्कनोप्टरस	संकटग्रस्त
श्याम गिद्ध	एजिपिथस मोनाकस	समीपवर्ती चेतावनी
यूरेसियन पांडुर गिद्ध	जिप्स फल्वस	कम चिन्ता
पांडुर गिद्ध	जिप्स हिमालऐन्सिस	कम चिन्ता
अरगुल गिद्ध	जिपीटस बारबाटस	कम चिन्ता

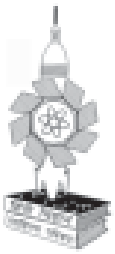

एशियाई गिद्ध दुर्घटना और वर्तमान स्थिति :- 1990 के पहले दशक में लगभग 40 लाख गिद्ध भारत में थे, जो लगभग 12 लाख टन मांस को वार्षिक दर से समाप्त किया करते थे. पिछले दस दशकों में डाइक्लोफेनेक नामक दवाई ने भारत से गिद्धों की 99 % आबादी को साफ कर दिया हैं. भारत में सर्वप्रथम गिद्ध की घटती हुई जनसंख्या केवलादेव, घाना नेशनल पार्क (भरतपुर, राजस्थान) में 1980 से 1990 के मध्य दर्ज की गई, जो आगे की गणना के लिए मील का पत्थर साबित हुई. अचानक गिद्धों की घटती हुई संख्या को तब उत्तरी भारत और इससे जुड़े हुए पड़ोसी देशों में भी अवलोकित किया गया. इसी क्रम में गिद्धों की चार प्रजातियां (सफेद पीठ वाले गिद्ध, बेलनाचुंच गिद्ध, दीर्घचुंच गिद्ध और राज गिद्ध), विश्व संरक्षण संघ द्वारा सूचीबद्ध गंभीर संकटग्रस्त श्रेणी में आ चुकी है जो कि खतरे के आंकलन की उच्चतम श्रेणी हैं. यह आंकलन सूचित करता है कि गिद्ध प्रजाति विश्व के जंगलों से निकट भविष्य में समाप्त हो सकती है. आहार श्रृंखला के सर्वोच्च स्थान में होने के कारण गिद्ध वातावरण में होने वाले परिवर्तन जैसे कि रासायनिक प्रदूषण, भोज्य पदार्थों की कमी, लिंगानुपात में कमी और आवास विनाश के लिए संवेदी होते हैं. गिद्धों की जनसंख्या गिरावट की जांच के दौरान पाया गया कि मवेशियों के उपचार में प्रयोग किया जाने वाला रसायन डाइक्लोफेनेक इसके लिए उत्तरदायी हो सकता है, जिसका प्रयोग 1980 के प्रारंभिक वर्षों से प्रचलन में आया. बाद में प्रयोगों में वातावरण में डाइक्लोफेनेक और गिद्धों की मौत के मध्य संबंध स्थापित हो गया. यह दवा मवेशियों को दर्दनिवारण के लिए दी जाती थी. यदि दवा के उपचार के 72 घंटे के भीतर पशु मर जाता है तो उसके शव में यह दवा उपस्थित रहती है. यदि गिद्ध इस दूषित शव का भोजन करते हैं, तो यही दवा उनके लिए विष का काम करती है. गिद्धों की मौत का मुख्य कारण डाइक्लोफेनेक विषाक्तता के दौरान गुर्दों की विफलता हैं जो कि कम समय में ही उन जानवरों की लोथ खाने से होती है जिनका कि इलाज कभी इन दर्दनिवारक दवा से हुआ होता हैं. ऐसे मामलों में गिद्धों में 85% आँतों के जख्म देखे गए हैं.

भारत में गिद्धों की संरक्षण नीति :- भारत सरकार ने गिद्धों के पुनः उत्पादन के लिए बहुमुखी योजना कार्यान्वित की हैं : (एक्ससीटू संरक्षण कार्यक्रम)

एक्ससीटू संरक्षण कार्यक्रम का उद्देश्य है, कि जंगलों में गिद्धों की जनसंख्या सन 2030 तक स्वतः स्थापित हो जाए. इसके पहले चरण में कैप्टिव ब्रीडिंग (संरक्षित प्रजनन) द्वारा गिद्ध जनसंख्या बढ़ाने का प्रस्ताव है तथा दूसरे चरण में इन गिद्धों को सुरक्षित प्राकृतिक वातावरण में, पुनः स्थापित करने का प्रस्ताव है. वर्तमान में ऐसे प्राकृतिक क्षेत्रों को चिन्हित किया जा रहा है जहां गिद्धों की प्राकृतिक आबादी है और नए गिद्ध जन्म ले रहे हैं. ऐसे क्षेत्रों के आस-पास डाइक्लोफेनेक - मुक्त भोजन की उपलब्धता सुनिश्चित करके उन्हें गिद्ध सुरक्षित क्षेत्र घोषित किया जाना है.

दक्षिणी एशिया के विभिन्न स्थानों में जिप्स नामक गिद्ध की तीन प्रजातियों (जो कि 'गंभीर संकटग्रस्त' हैं) को प्रजनन केंद्र में संरक्षित रखने के लिए केंद्रों की स्थापना की जा रही है. इन केंद्रों में एक्ससीटू संरक्षण बीमार गिद्धों की जांच के साथ-साथ मवेशियों के शवों का भी विश्लेषण किया जाता है. भारत में तीन जिप्स नस्लों का प्रजनन कार्यक्रम बम्बई प्राकृतिक ऐतिहासिक सभा (बी.एन.एच.एस.) मुंबई, द्वारा तीन केन्द्रों - पिंजौर (हरियाणा), राजभत्खावा (पश्चिम बंगाल) व रानी (आसाम) में चलाया जा रहा है. इसके अतिरिक्त केन्द्रीय चिडियाघर प्राधिकरण द्वारा पांच चिडियाघरों जो कि जूनागढ़, भोपाल, हैदराबाद, गुवाहाटी और भुवनेश्वर में स्थित हैं, को भी गिद्ध प्रजनन के लिए मान्यता प्रदान की गई है. प्रजनन केंद्रों के लिए किशोर पक्षियों को देश के विभिन्न भागों से पकड़ा जाता है और चिन्हित किया जाता है. बी.एन.एच.एस.के पिंजौर प्रजनन केन्द्र में पहला सफेद पीठ वाला गिद्ध चूजा 2007 और पहला बेलनाचुंच गिद्ध चूजा 2009 में पैदा हुआ. 2010 में पहला दीर्घचुंच गिद्ध चूजा कृत्रिम इन्क्यूबेशन से उत्पन्न हुआ और पला. बहुराष्ट्रीय संघ 'सेव' द्वारा दूसरे चरण में गिद्धों के संरक्षण की बात की जा रही है. इस संघ में गिद्ध बचाने वाले विशेषज्ञ हैं. वे इस पक्ष के प्रचार प्रसार में लगे है और इस काम के लिए फंड जुटाने में भी तत्पर है.

गिद्धों की प्रजनन दर धीमी होती हैं. ये एक पत्नीत्व के अभ्यासी पक्षी हैं. नर गिद्ध और मादा गिद्ध जीवन भर के लिए जोड़ा बनाते हैं और प्रायः पाँच वर्ष की आयु से प्रजनन प्रारंभ करते हैं. एक वर्ष में एक ही अण्डा देते हैं अतः गिद्धों की प्रजनन दर धीमी होती है. अब इस दर को बढ़ाने के लिए कृत्रिम इन्क्यूबेशन का सहारा लिया जा रहा हैं. जिप्स नामक प्रजाति का अण्डा सेने का समय अधिकतर 50-55 दिनों के बीच होता हैं. पक्षियों के प्रजनन कार्यक्रमों की सफलता में सबसे बड़ी समस्या लिंग की सटीक पहचान है, क्योंकि नर व मादा एकलस्वरूपी होते हैं, सामान्यतः इन्हें देखकर इनमें लिंग विभेद कर पाना संभव नहीं है. नर व मादा गिद्धों को प्रजनन केन्द्रों में समान अनुपात में रखा जाना प्रजनन की अधिकाधिक सफलता के लिए सहायक

होता है. भारतीय पशु चिकित्सा अनुसंधान संस्थान में गिद्धों की जिप्स प्रजातियों में आण्विक विधि से लिंग पहचान करने के लिए तरीका खोजा गया है तथा इसके द्वारा कैप्टिव ब्रीडिंग कार्यक्रम को सहयोग प्रदान किया जा रहा है.

भारत सरकार के साथ-साथ अन्य देशों ने भी जिप्स नामक प्रजाति के गिद्धों की आबादी को बचाने के लिए शुरूआत की है ताकि उन्हें संरक्षित प्रजनन द्वारा और उनकी वृद्धि को निगरानी द्वारा तब तक बचाया जा सके, जब तक कि वे स्वयं को स्थापित न कर लें.

विश्वसनीय जनसंख्या अनुमान का आंकलन :- बी.एन.एच.एस.द्वारा क्षेत्रीय स्तर पर, राज्य स्तर और देशीय स्तर पर गिद्धों के आवासीय घोंसले, गिद्धों की नई आबादी और आवासीय गिद्धों के बारे में सर्वेक्षण किया जा रहा हैं, जिससे कि उनकी आबादी स्वतः उत्पादित और स्थापित होने के आंकडे उपलब्ध हो सकें. साथ ही साथ पशु चिकित्सा में डाइक्लोफेनेक दर्द निवारक के प्रतिबन्ध का प्रभाव देखा जा सकें. बी.एन.एच.एस.द्वारा की गई 2007 की गणना के अनुसार भारत में 11000 सफेद पीठ वाले गिद्ध, 45000 बेलनाचुंच गिद्ध व 1000 दीर्घचुंच गिद्ध ही बचे हैं.

स्वस्थानी संरक्षण कार्यक्रम : इस कार्यक्रम का उद्देश्य पक्षियों को मुख्यतः सुरक्षित स्थान और विषैली दवाई डाइक्लोफेनेक से मुक्त भोजन उपलब्ध कराना है. भारत सरकार द्वारा चरणबद्ध तरीके से पशुचिकित्सा में प्रयुक्त दवाई डाइक्लोफेनेक के उपयोग को समाप्त करने और इसके विकल्प के रूप में किसी अन्य दवाई का उपयोग करने के लिए कई कदम उठाए गए हैं. 2004 में भारत ने आई.यू.सी.एन. के साथ जिप्स प्रजाति के गिद्धों के संरक्षण के लिए डाइक्लोफेनेक का पशुचिकित्सा में दर्द निवारक के रूप में उपयोग रोकने के लिए संकल्प लिया. पशुचिकित्सा अनुसंधान संस्थान, बी.एन.एच.एस. व वन विभाग हरियाणा ने रॉयल सोसाइटी फॉर प्रोटेक्शन ऑफ बर्डस से तकनीकी जानकारी प्राप्त कर के मेलोक्सीकेम नामक दवा का चार चरणों में परीक्षण करके पाया कि यह दवा गिद्ध-सुरक्षित है तथा पशुचिकित्सा में डाइक्लोफेनेक के विकल्प के रूप में प्रयोग हो सकती हैं. परिणाम स्वरूप भारत सरकार द्वारा 2006 में डाइक्लोफेनेक दवाई को दवा और कास्मेटिक अधिनियम के तहत धारा 10ए और 26ए के अन्तर्गत पशुचिकित्सा के लिए प्रतिबंधित कर दिया गया. कई अन्य वैकल्पिक दर्द निवारक दवाओं का परीक्षण किया जा रहा है ताकि पशुचिकित्सा के क्षेत्र में इन दवाओं का गिद्धों व अन्य मृतोपजीवी पक्षियों पर प्रभाव का पता लगाया जा सके. इसी कड़ी में किटोप्रूफेन नामक दवा भी गिद्धों के लिए असुरक्षित पाई हैं.

मुद्दे की बात यह है, पशुचिकित्सा में प्रतिबंधित होने के बावजूद डाइक्लोफेनेक मानव चिकित्सा के लिए उपलब्ध है तथा इसका पशुचिकित्सा में भी अवैध प्रयोग संभव है. इस संदर्भ में मृत मवेशियों के शवों में रसायन के स्तर की निगरानी अति आवश्यक है, ताकि खुले वातावरण में बचे खुचे गिद्धों की मृत्यु दर में नियंत्रण के लिए रासायनिक प्रदूषण, निवास संशोधन और बुनियादी ढाँचे के प्रभावों सहित गिद्ध संरक्षण के लिए अन्य संभावित खतरों पर विचार एवं अनुसंधान सुनिश्चित हो सके. भारतीय पशु चिकित्सा अनुसंधान संस्थान में बी.एन.एच.एस.व रॉयल सोसाइटी फॉर प्रोटेक्शन ऑफ बर्डस के सहयोग से पूरे भारतवर्ष से एकत्रित मृत गाय, भैंस के मृत शरीरों में डाइक्लोफेनेक अवशेषों के स्तर की प्रभावी व व्यापक निगरानी की जा रही हैं. 2004-05 के सर्वेक्षण में लगभग 11 प्रतिशत शव विषाक्त पाए गए.मेलोक्सीकेम नामक दवा गिद्धों के लिए अपेक्षाकृत सुरक्षित पाई गई, अतः इसके वैकल्पिक उपयोग पर बल दिया जाने लगा. भारत, नेपाल, पाकिस्तान सहित दक्षिणी-पूर्वी देशों में 2006 में डाइक्लोफेनेक दर्दनिवारक दवा का पशु चिकित्सा में उपयोग वर्जित कर दिया गया. 2007-08 के सर्वेक्षण में मवेशियों के लगभग 6 प्रतिशत शवों में डाइक्लोफेनेक के अवशेष मिले. 2008 में इस दवा की बिक्री, प्रचार प्रसार व उपयोग करने पर कारावास का प्रावद्यान किया गया है. हाल के सर्वेक्षण दर्शाते हैं कि अभी भी लगभग 4 प्रतिशत शव डाइक्लोफेनेक से विषाक्त हैं, जिनकी सर्वाधिक संख्या राजस्थान में है. विषाक्त शवों की संख्या में कमी तो आई है परंतु अभी भी यह आंकड़ा 1 प्रतिशत के सुरक्षित स्तर से ऊपर है. पशु चिकित्सा में डाइक्लोफेनेक के उपयोग को समाप्त करने के उद्देश्य से उठाये गये कोई भी कदम तब तक पूर्ण रूप से प्रभावी नहीं हो पायेंगे जब तक कि मानव चिकित्सा प्रयोग से डाइक्लोफेनेक समाप्त नहीं किया जाता.

गिद्ध संरक्षण कार्यक्रम की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि गिद्धों के भोजन से तत्काल विषैले दर्द निवारकों को दूर किया जाय और उनका सामान्य वातावरण के अनुसार समन्वय कराया जाय इसके लिए पशुचिकित्सकों और पशुओं के मालिकों की सक्रिय भागीदारी की आवश्यकता है. दोनों को नए मुद्दों से संबंधित जानकारी के लिए उपयुक्त तरीके से सूचित रखा जाना चाहिए. पशुपालक तो अपने पशु को जल्द से जल्द स्वस्थ देखना चाहता है, फिर भले ही इसके लिए कुछ कीमत क्यों न चुकानी पड़े. अतः चिकित्सकों व संबंधित कार्यकर्ताओं की नैतिक जिम्मेदारी बनती है कि

डाइक्लोफेनेक की जगह मेलोक्सीकेम जैसे परखे हुए गिद्ध-सुरक्षित दर्दनिवारक का प्रयोग करें. किसी भी दवा की वर्तमान स्थिति के बारे में झूठी जानकारी भ्रम में डाल सकती है अतः भारत सरकार ने इस विषय में सटीक और सही जानकारी संबंधित लोगों के साथ-साथ आम आदमी को भी देने के लिए व्यापक प्रचार व प्रसार अभियान शुरू करने का निर्णय लिया है.

दीर्घचुंच गिद्ध
(जिप्स इंडिकरा)

पांडुर गिद्ध
(जिप्स हिमालएन्सिस)

राज गिद्ध
(सारकोजिप्स काल्वस)

बेलनाचुंच गिद्ध
(जिप्स टन्यूरोस्टस्टरिस)

यूरेसियन पाडुर गिद्ध
(जिप्स फल्वस)

अरगुल गिद्ध
(जिपीटस बारबाटस)

सफेद पीठ वाले गिद्ध
(जिप्स बेन्गालेन्सिस)

गोपर गिद्ध
(नियोफरान पर्कनीप्टरस)

श्याम गिद्ध
(एजिपिथस मोनाकरा)

चित्र श्रृंखला - भारत में पाई जाने वाली नौ गिद्ध प्रजातियां

भास्कराचार्य (द्वितीय) : मूर्धन्य गणितज्ञ एवं खगोलशास्त्री

- डॉ.जगदीश चन्द्र व्यास-
तकनीकी भौतिकी प्रभाग, भा.प.अ.कें.मुंबई

भारत में गणित एवं खगोल (वेदांत ज्योतिष) के प्रखर विद्वानों की एक लंबी कड़ी रही है. सभी विद्वानों के कार्य उनके नामों के साथ आज उपलब्ध नहीं है, किन्तु कुछ प्रमुख विद्वानों के नाम आज भी आदर के साथ लिये जा सकते हैं. कात्यायन, आपस्तंभ, बौधायन, मानव, मैत्रायण, आर्यभट्ट, ब्रह्मगुप्त, भास्कराचार्य (प्रथम), वाराहमिहिर, महावीर, श्रीधर, भास्कराचार्य (द्वितीय), गणेश, बाधूल, नीलकंठ आदि इनमें प्रसिद्ध है. इस लेख में लेखक ने भास्कराचार्य (द्वितीय 1114-1183 ई.) के बारे में कुछ जानकारी प्रस्तुत की है. (सं.मं.)

भास्कराचार्य (जीवनकाल 1114-1183 ई.) भारत की उन विशिष्ठ विभुतियों में से एक थे, जिन्होंने न केवल अपने जीवन काल के दौरान वैश्विक ख्याति के कार्य किये, बल्कि अपने समय से पूर्ववर्ती विद्वानों के कार्यों को अपनी पुस्तक में सम्मिलित कर तत्कालीन गणितीय ज्ञान को प्रतिष्ठा प्रदान कराने का सराहनीय कार्य भी किया. उनकी पुस्तक सिद्धान्त शिरोमणि के बारे में ऐसी मान्यता है कि इस पुस्तक के स्तर की कोई अन्य रचना तत्कालीन या उसके बाद के निकटवर्ती समय की उपलब्ध नहीं होती है. ध्यान देने की बात यह भी है कि भास्कराचार्य के जीवनकाल के आसपास से ही भारत पर विदेशी आक्रान्ताओं के हमले प्रारंभ हो गये थे. यों तो इस प्रकार के आक्रमण पहले भी होते थे, किन्तु ये आक्रमण अलग प्रकार के थे, इनमें स्थानीय ज्ञान-विज्ञान एवं सभ्यता के पूर्ववर्ती मानकों को नष्ट करने, जला देने या उन्हें समाप्त करना भी इन आक्रामकों या उनके सिपहसालारों के उद्देश्य में सम्मिलित हुआ करता था. नालंदा विश्व विद्यालय के विशाल पुस्तकालय को जलाने का उदाहरण इसका एक ऐतिहासिक प्रमाण है. संभवतः अन्यान्य कारणों के साथ साथ यह भी एक कारण रहा होगा कि बाद के कोई ग्रंथ ठीक से उपलब्ध नहीं हैं. यह ग्रंथ 'सिद्धान्त शिरोमणि' इतना विलक्षण है कि गणित और खगोल विषयक तत्कालीन या पूर्ववर्ती जानकारी केवल इस अकेले ग्रंथ के अध्ययन से प्राप्त की जा सकती है.

आचार्य भास्कर शांडिल्य गौत्रीय ब्राह्मण थे और उनका जन्म विजड़वीड नामक ग्राम में हुआ था जो सह्याद्री पहाड़ियों के अंदर स्थित था. यह स्थान वर्तमान महाराष्ट्र या कर्नाटक प्रदेश में स्थित रहा होगा, और इसकी ठीक ठीक जानकारी करना शोध का एक अच्छा विषय हो सकता है. स्वयं भास्कराचार्य अपने बारे में लिखते हैं, 'मेरा जन्म शके 1036 (सन् 1114) में हुआ और जब मैंने इस ग्रंथ (सिद्धान्त शिरोमणि) की रचना की, तब मेरी आयु 36 वर्ष हो रही है.' उनकी अपनी शिक्षा के बारे में भी भास्कराचार्य लिखते है, 'मैंने अष्टाध्यायी (संस्कृत व्याकरण की प्रसिद्ध पुस्तक), छः प्रकार के वैद्यक ग्रंथ, षट्दर्शन (न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, पूर्वमीमांसा एवं उत्तर मीमांसा या वेदान्त) गणित के पांचों भाग, एवं वेदादि ग्रंथों का अध्ययन किया है.'

भास्कराचार्य प्रणीत 'सिद्धान्त शिरोमणि' संस्कृत भाषा में काव्यात्मक रूप में लिखा गया श्लोकबद्ध सुंदर ग्रंथ हैं, जिसके चार भाग है, और कुल श्लोक संख्या 1443 है.

ये भाग इस प्रकार है :-

1) लीलावती (278 श्लोक) - इसमें प्रमुख रूप से अंक गणित और संबंधित समस्याओं या प्रश्नों का उल्लेख है.

2) बीज गणित (213 श्लोक) - इसमें प्रमुख रूप से बीज गणित और तत्संबन्धित प्रश्नों का उल्लेख है.

3) ग्रह गणिताध्याय (451 श्लोक) - यहां सौर ग्रहों और उनके परिमण्डलीय गतियों, दूरियों, भ्रमणकाल आदि का उल्लेख है.

4) गोलाध्याय (501 श्लोक) - इसमें खगोलीय गणित जिसमें ज्यामिति, कोण, कोणीय भिन्न, ज्या इत्यादि त्रिकोणमिति संबन्धित सूत्रों का वर्णन है.

भास्कराचार्य स्वयं अवन्तिका (वर्तमान उज्जैन, मध्य प्रदेश) की वेधशाला के प्रमुख आचार्य रहे और उनके संरक्षण में यह वेधशाला तत्कालीन भारत की प्रमुख वेधशालाओं में से एक बनी रही. सिद्धान्त शिरोमणि के चारों भाग उत्तम प्रकार की रचनाएं है. किन्तु लीलावती सबसे अधिक जाना-माना भाग है. जैसे श्रीमद् भगवद्गीता महाभारत के भीष्म

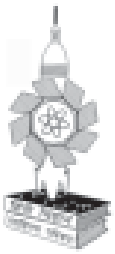

पर्व का एक भाग होकर भी अपने आप में भारतीय दर्शन का एक विशिष्ठ ग्रंथ है, वैसे ही लीलावती का स्थान सिद्धान्त शिरोमणि को लोकप्रियता प्रदान कराने वाला भाग है. काव्यात्मकता के अलावा यह भाग गणित की कठिन समस्याओं को सरलतम तरीके से प्रस्तुत करता है. अनेक विदेशी एवं भारतीय भाषाओं में इसका अनुवाद भी हो चुका है.

लीलावती

लीलावती भास्कराचार्य की लड़की थी, जिसके बारे में अन्य (तत्कालीन) ज्योतिषियों का मत था कि लीलावती का वैवाहिक जीवन सुखी नहीं रह पायेगा, अतः विवाह न करें, तो ही ठीक है. भास्कराचार्य स्वयं भी एक अच्छे ज्योतिषी थे और उन्होंने अपनी लड़की के विवाह के लिए शुभ मुहुर्त निकाला. किन्तु समय मापने की घड़ी (जल घड़ी) में गड़बड़ होने से मुहूर्त का समय टल गया और विवाह का परिणाम ठीक नहीं रहा. भास्कराचार्य ने लीलावती को अंकगणित की शिक्षा दी और पूर्णांक, भिन्न राशियाँ, त्रैराशिक, ब्याज, व्यापार, मिश्रण, श्रेणियाँ, श्रृंखला, क्रमचय, मापिकी, बीजगणित आदि में रूचि उत्पन्न की. परिणामतः लीलावती काल प्रवाह में अमर पात्र बन गयी.

यहां हम लीलावती से ली गयी दो सरल समस्याओं से आपका परिचय कराते हैं.

एक माला के मोती, इस माला के टूट जाने पर बिखर गये है, और यह बिखराव इस प्रकार से है.

कुल मोतियों का छठा भाग जमीन पर गिरा है. पांचवां भाग पलंग पर गिरा है. तीसरा भाग हाथों में आ गया है. दसवां भाग सहचारी के पास है, और इसके बाद भी छः मोती माला के सूत्र में बचे हुए हैं, आपको बताना है कि माला के अंदर कुल मोतियों की संख्या कितनी थी.

यह सरल प्रश्न बीज गणितीय तरीके से इस प्रकार होगा.

माना कि कुल मोतियों की संख्या X है. तो उपरोक्त प्रश्न के अनुसार दी गई शर्तों के आधार पर निम्नलिखित समीकरण बन जाता है.

$(X/6) + (X/5) + (X/3) + (X/10) + 6 = X$

भिन्न राशियों का लघुत्तम गुणन अंक 30 है.

अतः $\frac{5X + 6X + 10X + 3X + 180}{30} = X$

या $24X + 180 = 30X$

अतः $6X = 180$

या $\therefore X = 180/6 = 30$

अर्थात उस माला में कुल 30 मोती होने चाहिए.

दूसरी समस्या अधिक रूचिकर है, जो इस प्रकार है.

एक मोर (पक्षी) 5 मीटर ऊंचे सीधे स्तंभ पर बैठा है, जिसके ठीक नीचे की ओर तल पर एक बिल है. इस बिल से 25 मीटर की दूरी पर एक सर्प है, जो मोर को देखते ही बचने के लिए बिल की ओर सीधी रेखा की दिशा में भागता है. मोर भी सर्प को उसी समय देख लेता है और तत्काल उसे पकड़ने के लिये सीधी रेखा में इस प्रकार उड़ता है कि वह सर्प को रास्ते में पकड़ लेता है. प्रश्न यह है कि यदि मोर और सर्प दोनों के भागने की गतियां एक समान हों, तो मोर किस स्थान पर सर्प को पकड़ लेगा.

हम इस समस्या का हल ज्यामिति की बौधायन-पाइथोगोरस प्रमेय को उपयोग में लेकर करेंगे.

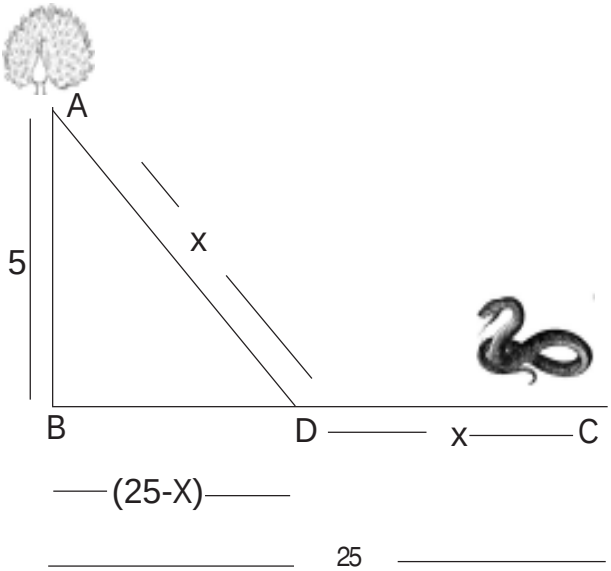

माना कि मोर खंभे AB के ऊपरी बिंदू A पर बैठा है. जैसा की चित्र में ऊपर दर्शाया गया है. अतः A B = 5 मीटर है. माना की सर्प और मोर जब एक दूसरे को देखते हैं तब सर्प बिंदू C पर है.

अतः खंभे के तल अर्थात बिंदू B से बिंदू C की दूरी BC = 25 मीटर होगी.

यदि स्थान D (बिंदु) पर मोर इस सर्प को पकड़ लेता है, तो दोनों प्राणियों की गतियां समान होने से दूरी AD और दूरी CD बराबर होंगी. माना कि दूरी AD = दूरी CD = X तो उपरोक्त प्रश्न की शर्तों के अनुसार त्रिभुज ABD एक समकोणीय त्रिभुज है, जिसमें पाइथागोरस - बौधायन प्रमेय की शर्त से निम्न संबंध का पालन होना चाहिए.

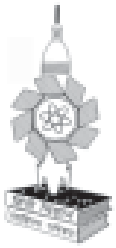

आधार का वर्ग + लम्ब का वर्ग = विकर्ण का वर्ग

अर्थात

$BD^2 + AB^2 = AD^2$

या $(25-X)^2 + 5^2 = X^2$

अथवा $25^2 - 50X + X^2 + 5^2 = X^2$

इस समीकरण में X^2 की राशी दोनों ही पक्षों में होने से बाहर निकल जाती हैं, और हम पाते हैं

$25^2 - 50X + 5^2 = 0$

या $X = (625+25)/50 = 13$

अर्थात 13 मीटर की दूरी तक उड़कर मोर, सर्प को पकड़ लेगा. और उस समय सर्प बिल से (25-13) = 12 मी. की दूरी पर होगा. भास्कराचार्य का प्रश्न हल हो चुका है, किन्तु इसका थोड़ा सा विस्तार करना हम यहां इसलिए उचित मानते हैं, क्योंकि इस प्रश्न को विस्तारित करने से पाईथागोरस - बौधायन के पूर्णसंख्याकी त्रिफलक संख्याओं का मान आसानी से निकाल सकते है. इन संख्याओं की विशेषता यह है कि इन त्रिफलकों की आनुपातिक लंबाई की भुजाओ से बने सभी त्रिभुज समकोण त्रिभुज ही होंगे, अर्थात ये संख्याए यदि a, b व c हों, तो इनके बीच में संबंध $a^2 + b^2 = c^2$ का पालन होना चाहिए. उदाहरण के लिए 3, 4, 5 ऐसा एक त्रिफलक है, क्योंकि $3^2 + 4^2 = 5^2$ होता है. यह प्रश्न इस प्रकार के सभी पूर्ण अंक धारी त्रिफलकों को प्राप्त करने का सटीक उदाहरण प्रस्तुत करता है.

माना कि बिल से सर्प की दूरी m मी. है, और मोर की बिल से ऊंचाई अर्थात खंभे की ऊंचाई n मी. है.

तब उपरोक्त प्रश्नानुसार यदि x दूरी चलकर मोर इस सर्प को पकड़ता है तो

$n^2 + (m-X)^2 = X^2$

या $n^2 + m^2 - 2mX + X^2 = X^2$

अतः $X = (n^2+m^2)/2m$

यह सूत्र m या n के किसी भी धनात्मक मान के लिये सही है.

किन्तु X का पूर्णांकीय मान होने के लिये यहां m और n को भी पूर्ण संख्या होने के अलावा उनके सम, विषम या भिन्न n^2/m के मान पर भी निर्भर करेगा.

पहली बात तो यह है कि X के पूर्णांकी मान के लिये $(n^2 + m^2)/m$ को एक सम संख्या होना, प्राथमिक और आवश्यक शर्त है. इस शर्त के अंतर्गत यदि m एक विषम संख्या है तो n^2/m को भी विषम संख्या ही होना आवश्यक है. अर्थात n^2 स्वयं विषम संख्या होने के साथ-साथ m से पूर्णतः भाजित हो सकने वाली संख्या भी होना चाहिए. स्पष्ट है कि m तथा n दोनों ही संख्याए विषम संख्या समुच्चय से ही होंगी. अर्थात यदि m विषम संख्या है तो n को भी विषम संख्या समुच्चय की ही कोई ऐसी संख्या होना चाहिए, जिसका वर्ग m से पूर्णतः विभाजित होता हो.

दूसरी ओर यदि m एक सम संख्या है, तो (n^2/m) को भी एक पूर्ण सम संख्या ही होना चाहिए. अर्थात n के वही सम संख्याकी मान शुद्ध हल बनायेगे जो की n के वर्ग यानी n^2 में m का भाग देने पर भी कोई समसंख्या ही दें.

इसके अलावा अन्य कोई भी पूर्ण संख्याए, पूर्णांकी X का मान लाने में असमर्थ होंगी. यह पाया गया है कि पूर्णांकी X के सभी मान विषम संख्या समुच्चय से ही आते हैं, अर्थात समकोण त्रिभुज के विकर्णो की लंबाई विषम संख्या समुच्चय से ही प्राप्त होती है.

इसे ठीक से समझने के लिए हम n = 1 मान लेते है.

तब $X = (1 + m^2)/2m$ होगा

याद रहे, यहां m = 1, 2, 3 इत्यादि पूर्णांक संख्याएं है, परन्तु उपरोक्त संबन्ध से X का मान m = 1 के अलावा m के सभी मानों के लिए (याद रहे m = 1 की अवस्था में त्रिभुज नहीं बन पाता है) एक शुद्ध भिन्न के रूप में प्राप्त होता है, अर्थात $X = p/q$, जहां p और q दोनों ही पूर्णांक संख्या समुच्चय के कोई अंक है. इस भिन्न को q से गुणा करके हम पूर्ण संख्यांकी X अर्थात p को प्राप्त कर लेते हैं. यहां यह संख्या q ही त्रिफलक से बनने वाले त्रिभुज के लंब का मान भी है. इस लंब और विकर्ण से संबंधित आधार का मान $qm - qX = (qm - p)$ होगा. इस प्रकार इन संख्याओं की पूरी सूची का समुच्चय उपरोक्त भिन्नों से प्राप्त किया जा सकता है. जिनको पूर्णांकी बनाकर हम सभी त्रिफलकों के मान की सारणी बना सकते हैं. पाठकों की सुविधा के लिए कुछ प्रारंभिक अंकों से बनी सारणी का भाग यहां दिया गया है.

यदि थोड़ा सा ध्यान देकर इस सारणी को देखेंगे तो आप पायेंगे की X=1 को छोड़कर (इसमें त्रिभुज नहीं बनता है) सभी पूर्णांकी विकर्ण विषम संख्या समुच्चय से ही आते हैं. और इनमें आपसी संबंध भी है, यथा 5, 13, 17, 25, 37, 41 आदि. इसी प्रकार 4 से पूर्णतः विभाजित होने वाली सभी सम संख्याएं भी पूर्णाकी लंब का मान देने में सक्षम है.

संबधित त्रिभुज के आधार का मान लंब और विकर्ण की लंबाईयों से जुड़ा हुआ है. किन्तु हम पाते है कि एक त्रिफलक में पूर्णांकी आधार की लंबाई, पूर्णांकी विकर्ण की लम्बाई से या तो 1 या 2 मानक (इकाई) कम है. एक और विशेषता इन त्रिफलकसंख्यांकों में आप देख सकते हैं कि

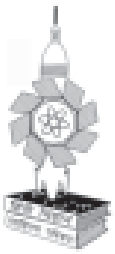

ऐसे त्रिभुजों में यदि आधार की लंबाई सम संख्या है तो लंब अवश्य ही विषम संख्या समुच्चय से होगा. इसके विपरीत यदि लंब सम संख्या समुच्चय से हैं तो आधार विषम संख्या समुच्चय से होगा.

इस प्रकार इन संबन्धों से हम किसी भी पूर्णांकी संख्या वाले त्रिफलक की संख्याओं से निर्मित संपूर्ण समुच्चय को भली प्रकार से निकाल सकते हैं. विशेष यह कि यहां विकर्ण की लंबाई निकालने के लिए वर्गमूल लेने की आवश्यकता ही नहीं पड़ती, जो की अन्य सर्वसामान्य तरीकों से इसका मान प्राप्त करने के लिये आवश्यक है. इस प्रकार भास्कराचार्य ने इस प्रश्न द्वारा वर्ग मूल निकालने की कठिनाई को दूरकर इस प्रकार के प्रश्नों को हल/सरल करने का सुंदर प्रयत्न किया है.

उपरोक्त प्रश्न यह भी दर्शाता है कि किस प्रकार लीलावती में वर्णित इस सरल से प्रश्न में गहराईयां छिपी हुई है, जिनको उपरोक्त प्रकार के विस्तारीकरण द्वारा समझा जा सकता है. इस प्रकार के विस्तारीकरण से यह भी स्पष्ट होता है कि वर्तमान से लगभग एक हजार वर्ष पूर्व भारत का गणितीय ज्ञान विश्वस्तरीय ऊंचाईयों को छू रहा था.

सारणी

m के प्रारंभिक मान	$x = (1+m^2)/2m = p/q$ यहां x का मान एक भिन्न के रूप में है.	पूर्णांकी x क़े लिए m का परिष्कृत मान = q.m	पाइथोगोरस बौधायन त्रिफलकों के मान		
			पूर्णांकी x का मान = p (विकर्ण का मान)	लंब का मान = q	आधार का मान = q(m-x)
1	1	1	1	1	0
2	5/4	8	5	4	3
3	5/3	9	5	3	4
4	17/8	32	17	8	15
5	13/5	25	13	5	12
6	37/12	72	37	12	35
7	25/7	49	25	7	24
8	65/16	128	65	16	63
9	41/9	81	41	9	40
10	101/20	200	101	20	99
11	61/11	121	61	11	60
12	145/24	288	145	24	143
13	85/13	169	85	13	84
14	197/28	392	197	28	195
15	113/15	225	113	15	112
16	257/32	512	257	32	255
17	145/17	289	145	17	144
18	325/36	648	325	36	323
19	181/19	361	181	19	180
20	401/40	800	401	40	399

भूल सुधार : वैज्ञानिक के पिछले अंक (वर्ष 43, अंक 2-4) में डा.सविता गुप्ता के लेख 'मैंग्रोव का अद्भूत संसार' में पृष्ठ 45 के पहले कॉलम के दूसरे पैरा की अंतिम पंक्ति में ड्यूक (1192) के स्थान पर 'ड्यूक (1992)' तथा पृष्ठ 48 पर चित्र 5 क व 5 ख के विवरण में राइजोकोरा के स्थान पर 'राइजोफोरा' पढ़ा जाय. उपरोक्त अशुद्धियों के लिए स.मं. खेद व्यक्त करता है. - सं.मं.

महाविद्यालय स्तर की प्रतियोगिता में प्रथम पुरस्कार प्राप्त लेख

नाभिकीय ऊर्जा की अपरिहार्यता

- प्रिती त्रिपाठी -
महात्मा गांधी चित्रकुट ग्रामोदय विश्वविद्यालय, चित्रकुट, सतना (म.प्र.)

प्रस्तावना : नाभिकीय ऊर्जा एक नवीकरणीय ऊर्जा का स्रोत है. नाभिकीय ऊर्जा की अपरिहार्यता का तात्पर्य वर्तमान ऊर्जा उत्पादन के स्रोत और उपलब्धता में नाभिकीय ऊर्जा का महत्व तथा इसकी आवश्यकता से है. आधुनिक युग में नाभिकीय ऊर्जा के नवीन आविष्कारों ने विश्व में क्रांति सी ला दी है. मानव इसकी सहायता से प्रकृति पर विजय प्राप्त करने की तरफ अग्रसर हो रहा है. आज से पचास सौ वर्ष पहले लोग नाभिकीय ऊर्जा के जिन आविष्कारों की कल्पना भी नहीं कर पाते थे, वे सभी आविष्कार आज हमारी आंखों के सामने हैं.

नाभिकीय ऊर्जा ने अपनी शक्ति और महत्ता से विश्व की काया पलट कर रख दी है. नाभिकीय ऊर्जा का यदि सदुपयोग किया जाए तो यह हमारे लिए एक वरदान की तरह है, परंतु यदि इसका गलत ढंग से और गलत कार्यों के लिए प्रयोग किया जाए तो यह हमारे लिए किसी अभिशाप से कम भी नहीं है. नाभिकीय ऊर्जा का प्रयोग कई क्षेत्रों, जैसे-चिकित्सा, कृषि, तथा उद्योग आदि क्षेत्रों में हो रहा है.

नाभिकीय ऊर्जा की परिकल्पना : नाभिकीय ऊर्जा की खोज में प्रयासरत वैज्ञानिकों ने यह पता लगाया कि मध्यम द्रव्यमान के नाभिकों की तुलना में भारी नाभिकों (जैसे-यूरेनियम-235) की बंधन ऊर्जा प्रति न्यूक्लिऑन (नाभिकीय कण) कम होती है, जिसके कारण भारी नाभिक कम स्थायी होते हैं, तथा पर्याप्त ऊर्जा मिलने पर मध्यम द्रव्यमान के दो खण्डों में विभक्त हो सकते हैं.

एनरिको फर्मी (इटैलियन वैज्ञानिक) ने सन् 1934 में नाभिकीय विखण्डन प्रक्रिया के बारे में बताया था. तत्पश्चात् सन् 1939 में जर्मन वैज्ञानिक ऑटो हॉन और एफ.स्ट्रॉसमैन ने ज्ञात किया कि जब यूरेनियम- 235 पर मंद गति के न्यूट्रॉन की बौछार की जाती है तो यूरेनियम-235 का भारी नाभिक मध्यम द्रव्यमान के दो खण्डों में विभक्त हो जाता है, और इसके साथ बहुत अधिक ऊर्जा भी उत्सर्जित होती है. यही ऊर्जा नाभिकीय ऊर्जा कहलाती है. विश्व में पहला न्यूक्लियर पॉवर प्लान्ट सन् 1954 में बनाया गया था.

नाभिकीय अभिक्रिया के प्रकार : नाभिकीय अभिक्रिया दो प्रकार की होती है जिसका वर्णन अग्रलिखित है -

नाभिकीय विखण्डन, एवं नाभिकीय संलयन

नाभिकीय विखण्डन : वह नाभिकीय अभिक्रिया जिसमें कोई भारी नाभिक (जैसे-यूरेनियम-235) मध्यम द्रव्यमान के दो खण्डों में विभक्त हो जाता है, नाभिकीय विखण्डन अभिक्रिया कहलाती है.

यूरेनियम-235 का नाभिकीय विखण्डन मुख्यतः निम्नलिखित समीकरण के अनुसार होता है (चित्र -1 देखिए)-

$$^{235}U + {}^{1}n \longrightarrow {}^{141}Ba + {}^{87}Kr + 3\,{}^{1}n + \text{ऊर्जा}$$

यूरेनियम-235 के नाभिकीय विखण्डन अभिक्रिया में लगभग 0.215 AMU (एटोमिक मास यूनिट) द्रव्यमान क्षति होती है, जो लगभग 200 MeV(मिलीयन इलेक्ट्रोन वोल्ट) ऊर्जा के तुल्य है. अधिक द्रव्यमान क्षति के कारण ही नाभिकीय विखण्डन अभिक्रिया में अत्यधिक ऊर्जा उत्सर्जित होती है.

परमाणु बम नाभिकीय विखण्डन क्रिया पर आधारित है. यह बम सर्वप्रथम सन् 1945 में बनाया गया था. परमाणु बम में विस्फोट अनियंत्रित विखण्डन क्रिया के कारण होता है. परमाणु बम का विस्फोट अत्यधिक विध्वंसक होता है.

नाभिकीय संलयन : वह नाभिकीय अभिक्रिया जिसमें

दो बहुत हल्के नाभिक परस्पर संयुक्त होकर भारी नाभिक बनाते हैं, नाभिकीय संलयन कहलाती है. नाभिकीय संलयन अभिक्रिया में द्रव्यमान क्षति अधिक होने के कारण बहुत अधिक ऊर्जा उत्पन्न होती है, जिसकी मात्रा नाभिकीय विखण्डन में उत्पन्न ऊर्जा से कई गुना अधिक होती है.

ड्यूटीरियम (भारी हाइड्रोजन) के दो नाभिकों के संलयन से हीलियम-4 का नाभिक बनता है.

हाइड्रोजन बम नाभिकीय संलयन क्रिया पर आधारित है. प्रथम हाइड्रोजन बम सन् 1952 में अमेरिकन वैज्ञानिकों ने बनाया. हाइड्रोजन बम में ड्यूटीरियम और ट्रीशियम के

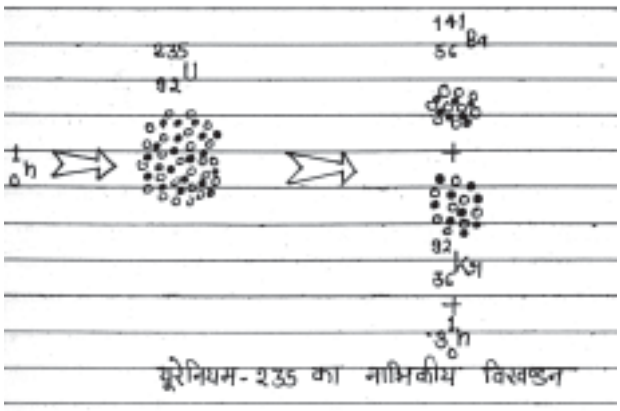

चित्र 1 : विखंडन प्रक्रिया का एक प्रतिरूप

नाभिकों का संलयन होता है और बहुत अधिक ऊर्जा मुक्त होती है. संलयन क्रिया को प्रारंभ कराने के लिए पहले परमाणु बम में विस्फोट कराया जाता है. परमाणु बम में विस्फोट से कुछ क्षण के लिए कई लाख डिग्री का ताप उत्पन्न हो जाता है, और इस ताप पर संलयन क्रिया प्रारंभ हो जाती है. संलयन क्रिया बहुत तीव्र गति से होती है और कुछ ही क्षणों में प्रचंड विस्फोट हो जाता है. यह विस्फोट परमाणु बम के विस्फोट से कई गुना अधिक विध्वसंक भी होता है.

नाभिकीय ऊर्जा मानव समाज की सेवा में : 20वीं सदी में बिजली उत्पादन के लिए परमाणु ऊर्जा की खोज हुई साथ ही ऊर्जा की भारी मात्रा वाले रेडियोधर्मी तत्वों जैसे रेडियम की भी खोज हुई.

सन् 1932 में, जेम्स चेडविक ने परमाणु प्रयोग के लिए सम्भावित क़ण न्यूट्रॉन की खोज की.

नाभिकीय ऊर्जा या परमाणु ऊर्जा का मानव समाज के विकास में अत्यन्त महत्वपूर्ण योगदान रहा है. नाभिकीय ऊर्जा के कुछ शान्तिमय उपयोग निम्नलिखित प्रकार से हैं -

विद्युत-शक्ति का उत्पादन (न्यूक्लीयर शक्ति संयत्र) : न्यूक्लीयर शक्ति संयत्र साधारण ऊष्मीय शक्ति संयत्र से मिलता-जुलता होता है, परंतु ऊष्मीय शक्ति संयत्र में जल को गर्म करने के लिए ऊष्मा, कोयला, तेल या गैस (फॉसिल ईंधन) जलाकर प्राप्त की जाती है. जबकि न्यूक्लीयर शक्ति संयत्र में नाभिकीय ईंधन जैसे यूरेनियम - 235, के नाभिकीय विखण्डन से निर्मुक्त ऊर्जा द्वारा जल गर्म किया जाता है. चित्र-2 में प्रदर्शित नाभिकीय शक्ति संयंत्र में, यूरेनियम-235 ईंधन और जल (H_2O), न्यूट्रॉन मन्दक और शीतलक दोनों का ही कार्य करता है, जबकि कैडमियम की छड़ें न्यूट्रॉन-अवशोषक अर्थात विखण्डन दर-नियन्त्रक का कार्य करती हैं.

न्यूक्लीयर रियेक्टर विद्युत शक्ति संयन्त्र का मुख्य भाग होता है जिसमें यूरेनियम-235 का नियंत्रित विखण्डन कराया जाता है.

रियेक्टर की कोर में इंधन की छड़ें और नियंत्रण छड़ें रखी जाती हैं. ये छड़ें प्राथमिक शीतलक जल में डूबी रहती हैं. जल न्यूट्रॉन-मन्दक और प्राथमिक शीतलक दोनों का कार्य करता है. प्राथमिक शीतलक नाभिकीय विखण्डन अभिक्रिया द्वारा जनित ऊष्मा को अवशोषित करता है. तेज गर्म जल, अभिक्रिया पात्र से, एक बंद लूप द्वारा भाप जनित्र में घूमता हुआ पुनः अभिक्रिया पात्र में आ जाता है. गर्म दाबित भाप की ऊर्जा टरबाइन के घूमते हुए फलकों और टरबाइन से जुड़े हुए वैद्युत जनित्र में स्थानान्तरित हो जाती है. जलवाष्प द्रवणित्र में ठंडी होकर द्रवित हो जाती है और द्रवित जल पुनः भाप जनित्र में चला जाता है.

पोखरण परमाणु विस्फोट (भारत की विशेष उपलब्धि) : मई 11, 13 (1998) के दौरान भारत द्वारा पोखरण में परमाणु विस्फोट (अधिकतम 45 किलो टन विस्फोट लब्धि) किये गये. इसके फलस्वरुप भारतीय वैज्ञानिकों एवं प्रौद्योगविदों ने इस कठिन तकनीकी को सफलता पूर्वक कार्यान्वित करके अपने आत्मविश्वास को और दृढ़ कर दिया. नीचे प्रस्तुत चित्र-3 में इन्हीं परीक्षणों के दौरान बने भूक्रेटर को दिखाया गया है. इन परीक्षणों के साथ ही बहुचर्चित परमाणु परीक्षणों की रोक संबंधी व्यापक संधि (सीटीबीटी) का मामला फिर से तेज हो गया. भारत के ऊपर बाहरी विश्व से कई आर्थिक प्रतिबंधों एवं परिष्कृत उपकरणों की उपलब्धता पर कठोर प्रतिबंधों की घोषणा हो गयी.

पचास के दशक के अंतिम वर्षों में अमेरिकी एवं रूसी वैज्ञानिकों के बीच भूमिगत नाभिकीय परीक्षणों के मॉनिटरन पर उस समय उपलब्ध वैज्ञानिक उपकरणों की क्षमताओं एवं मापन पद्धतियों पर संदेह होने के कारण मतभेद रहा.

फलस्वरूप वे दोनों 1963 में एक मर्यादित परमाणु परीक्षण रोक संधि के लिए सहमत हुए. इसके अंतरगत वायुमंडल एवं भूमिगत जल में परीक्षणों की स्पष्ट रोक लगायी गयी. हालांकि सन् 1974 तक भूमिगत परीक्षण चलते रहे, परंतु फिर एक अन्य संधि- 'थ्रैशोल्ड टेस्ट बैन ट्रीटी' के आधार पर इन परीक्षणों की अधिकतम क्षमता/लब्धि को 150 किलोटन तक सीमित कर दिया गया.

प्लूटोनियम - 239 का उत्पादन (कृषि एवं चिकित्सा में उपयोग) : न्यूक्लीयर रियेक्टर द्वारा कई तत्वों के रेडियो आइसोटोप बनाये जाते हैं, जिनका उपयोग कृषि, चिकित्सा तथा कई अन्य क्षेत्रों में होता है. यूरेनियम-238 से प्लूटोनियम-239 का उत्पादन रियेक्टर द्वारा किया जाता है. न्यूक्लीयर रियेक्टर में, प्राकृतिक यूरेनियम जिससे (235/92)U समस्थानिक का न्यूट्रॉन प्रेरित नाभिकीय विखण्डन कराया

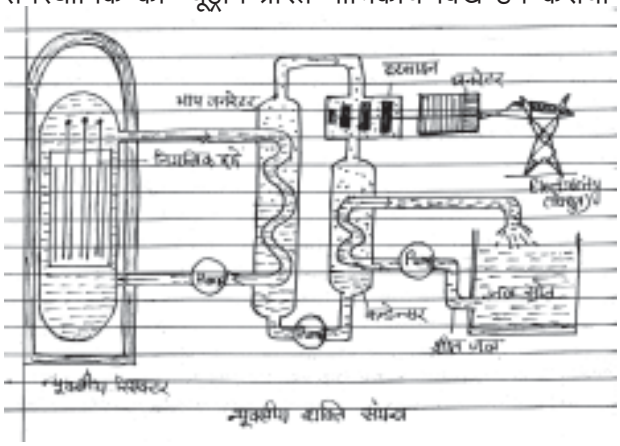

चित्र - 2 न्यूक्लियर शक्ति संयत्र का बिजली उत्पादन के लिए एक मॉडल

जाता है, जिसमें न्यूट्रॉन मुक्त होते हैं. यूरेनियम में उपस्थित (238/92)U समस्थानिक मन्द न्यूट्रॉन अवशोषित करता है जिससे (239/92)U बनता है और इसके-क्षय (बिटा उत्सर्जन) से (239/94)Pu समस्थानिक बनता है.

न्यूक्लीयर रियेक्टर या परमाणु भट्टी : न्यूक्लीयर रियेक्टर एक विशेष प्रकार की भट्टी है, जिसमें यूरेनियम-235 या अन्य विखण्डनीय नाभिकीय पदार्थ का नियंत्रित नाभिकीय विखण्डन कराया जाता है और विखण्डन से निर्मुक्त ऊर्जा पूर्ण नियंत्रण में रखी जाती है.

प्रथम रियेक्टर सन 1942 में अमेरिका में बनाया गया था, किन्तु आज लगभग सभी बड़े देशों ने नाभिकीय रियेक्टर बना लिये हैं. कुछ अनुसंधान-रियेक्टर, अप्सरा, ध्रुव और पूर्णिमा - II, भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र, ट्राम्बे, मुंबई में है तथा एक शोध रियेक्टर कामिनी, इंदिरा गांधी परमाणु अनुसंधान केंद्र कलपक्कम (तमिलनाडु) में भी हैं.

हम जानते हैं कि कोयले और पेट्रोलियम का अभाव दिन-प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है, जिससे अनेक कठिनाइयां उत्पन्न होती जा रही है. इस अभाव से बचने के लिए शान्तिपूर्ण कार्यों में नाभिकीय ऊर्जा का उपयोग करना बहुत आवश्यक है.

नाभिकीय ऊर्जा का प्रयोग विध्वंसक कार्यों में : मानव-समाज परमाणु बम के भयानक विध्वंसक रूप से परिचित है, किन्तु इसके उपरान्त भी आज कुछ देशों में एक से एक भयानक परमाणु हथियार बनाने की होड़ लगी हुई है. सन् 1945 में प्रथम परमाणु बम और सन् 1952 में परमाणु बन से कई गुणा अधिक शक्तिशाली हाइड्रोजन बम बनाया गया. आज जल, थल और वायु सेनाओं को अनेक प्रकार के एक से एक भयानक परमाणु-हथियार उपलब्ध हैं. परमाणु बम के विस्फोट से हुए जनसंहार और विनाश को देखते हुए यह आवश्यक है कि भविष्य में परमाणु-हथियारों का उत्पादन और उपयोग न हो तथा परमाणु ऊर्जा का उपयोग मानव हित में ही किया जाए.

परमाणु बम : परमाणु बम नाभिकीय विखण्डन प्रक्रिया पर आधारित है. इसमें (235/92)U या (239/94)Pu का विखण्डन होता है. परमाणु बम का विस्फोट अनियंत्रित विखण्डन प्रक्रिया के कारण होता है तथा ऊर्जा (ऊष्मा और प्रकाश के रूप में) उत्पन्न होती है.

द्वितीय विश्वयुद्ध में प्रथम परमाणु बम का विस्फोट 6 अगस्त, 1945 को जापान के हिरोशिमा पर और इसके तीन दिन बाद ही दूसरा विस्फोट जापान में ही नागासाकी नगर पर किया गया था.

परिणाम : ये परमाणु विस्फोट पृथ्वी से लगभग दो हजार फीट की ऊंचाई पर कराये गये थे, परंतु विस्फोट से उत्पन्न भयंकर ऊष्मा, आग और तूफान के प्रभाव से लगभग चार वर्ग मील का क्षेत्रफल पूर्णतया तहस-नहस हो गया था. हजारों व्यक्ति आग में झुलस गये. जन-जीवन, संपत्ति सभी नष्ट हो गये. विस्फोट से उत्पन्न रेडियोएक्टिव पदार्थ मीलों दूर तक फैल गये. रेडियोएक्टिव विकिरणों के प्रभाव से कई मनुष्य अन्धे हो गये तथा अनेक व्यक्तियों को असाध्य रोग हो गये. ऐसा कहा जाता है कि इस विस्फोट से लगभग दो लाख व्यक्ति मारे गये और इससे भी अधिक व्यक्ति बुरी तरह जख्मी हुए. इससे वहां की भूमि कृषि के अयोग्य और इसी प्रकार जल भी पीने योग्य नहीं रहा. रेडियोऐक्टिव विकिरणों के दीर्घकालीन प्रभावों के कारण आज भी वहां पर कई नवजात शिशु अन्धे और अपंग पैदा होते हैं.

फुकुशिमा डायची परमाणु आपदा (2011) : परमाणु ऊर्जा संयंत्र दुर्घटनाओं में चेरनोबिल आपदा (1986), थ्रीमाइल

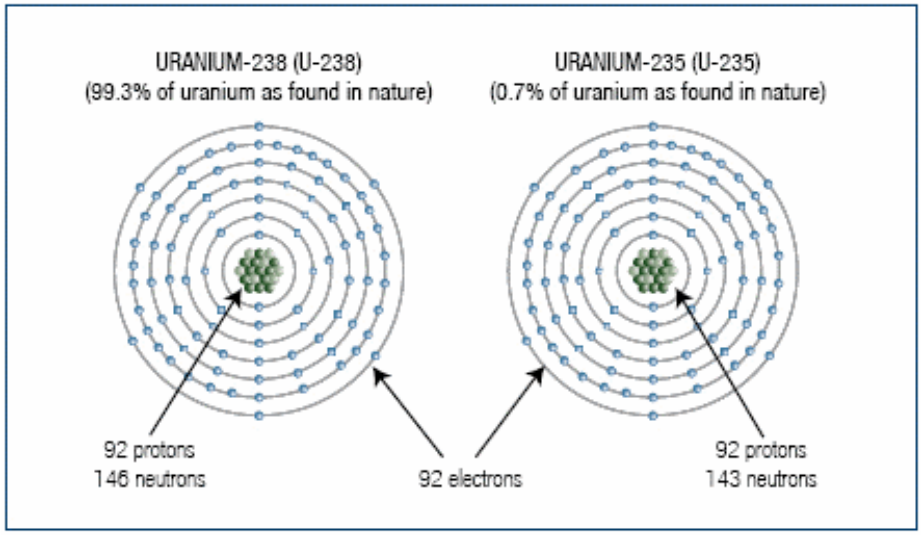

आइलैण्ड दुर्घटना (1979) तथा फुकुशिमा डायची परमाणु आपदा (2011) तीनों सम्मिलित हैं. इन आपदाओं में कई लोगों को अपनी जान से हाथ धोना पड़ा और कई लोग बुरी तरह घायल भी हुए. इन आपदाओं के कारण अरबों रूपयों की संपत्ति नष्ट हो गयी.

न्यूक्लीयर विज्ञान के क्षेत्र में हमारे देश की प्रगति

न्यूक्लीयर विज्ञान और न्यूक्लीयर प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में हमारे देश ने भी आश्चर्यजनक उन्नति की है. आज हमारे देश में कई न्यूक्लीयर रियेक्टर हैं जो अनुसंधान और विद्युत शक्ति उत्पादन के कार्य में हाथ बटा रहे हैं.

उपसंहार : विश्व में नाभिकीय - ऊर्जा के क्षेत्र में हमारे देश का छठा स्थान है. शांति, सदभावना और मानव-समाज के कल्याण में हमारा विश्वास है. चूंकि परमाणु ऊर्जा ने मनुष्य को कई क्षेत्रों में उपलब्धि दिलाई है. परमाणु-ऊर्जा का उपयोग शान्तिपूर्ण कार्यों में हो, युद्ध में नहीं, यही हमारी नीति है. परमाणु-बम के विस्फोट में हुए जनसंहार और विनाश को देखते हुए यह आवश्यक है कि भविष्य में परमाणु-हथियारों का उत्पादन और उपयोग न हो तथा परमाणु ऊर्जा का उपयोग मानव हित में किया जाए, क्योंकि हम यह अच्छी तरह जानते हैं कि इसका गलत ढंग से उपयोग किया जाना सृष्टि के विनाश का कारण बन सकता है. याद रहे, परमाणु-शक्ति यदि निर्माणकारी है तो दूसरी तरफ विध्वंसकारी भी है.

चित्र-3 भूमिगत नाभिकीय विस्फोट से बना भूक्रेटर

वैश्विक जलवायु परिवर्तन तथा संभावित दुष्प्रभाव : एक आकलन

- डॉ. अरविंद सिंह -
ओल्ड डी/३, जोधपुर कालोनी, काशी हिंदू विश्वविद्यालय,
वाराणसी-२२१ ००५, उ.प्र. ई-मेल : arvindsingh_bhu@yahoo.com

जलवायु परिवर्तन का मुख्य कारण वैश्विक तपन है जो हरितगृह प्रभाव का परिणाम है. इस प्रक्रिया में पृथ्वी से टकराकर लौटनेवाला सूर्य किरणों का विकिरण वातावरण में उपस्थित कुछ गैसों द्वारा अवशोषित हो जाता है. यह अवशोषित विकिरण फिर से उत्सर्जित होकर समान रूप से सभी दिशाओं में विकिरित होता है और फलस्वरुप इसका अधिकांश भाग पुनः पृथ्वी की ओर लौट आता है. जो पृथ्वीतल को गर्म करने में सहायक होता है. परिणामस्वरुप पृथ्वी के तापमान में वृद्धि होती है. इस प्रभाव को हरितगृह प्रभाव के नाम से जाना जाता है. जो गैसें हरितगृह प्रभाव के लिए उत्तरदायी है उनको हरितगृह गैस के नाम से जाना जाता है. कार्बन डाईऑक्साइड (CO_2), मीथेन (CH_4), क्लोरोफ्लोरोकार्बन्स (CFC), नाइट्रस ऑक्साइड (N_2O) तथा क्षोभ मंडलीय ओजोन (O_3), मुख्य हरितगृह गैसे हैं, जो हरितगृह प्रभाव के लिए उत्तरदायी हैं. विभिन्न कारणों से वातावरण में इनकी निरंतर बढ़ती मात्रा से वैश्विक जलवायु परिवर्तन का खतरा दिनोंदिन बढ़ता जा रहा है.

पृथ्वी की सतह का औसत तापमान लगभग 15^{0}C है. यह तापमान हरितगृह गैसों के न होने पर जो ताप होता उससे तकरीबन 33^{0}C (सेल्सियस) अधिक है. याद रहे हरितगृह गैसों के अभाव में पृथ्वी की सतह का अधिकांश भाग -18^{0}C के औसत तापमान के आसपास होता. जो संभवतः वर्तमान जीवन चक्र को चलाने के मार्ग में एक बड़ी रुकावट खड़ी कर देता. अतः एक सीमा में हरितगृह गैसों की पृथ्वी के वातावरण में उपस्थिति हमारे जीवन के उद्‌भव, विकास तथा निवास के लिए अनिवार्य भी है.

नगरीकरण, औद्योगीकरण, कोयले पर आधारित विद्युत तापगृह, तकनीकी तथा परिवहन क्षेत्र में क्रांतिकारी परिवर्तन, कोयला खनन, भू-उपयोग में परिवर्तन, मानव जीवन के रहन-सहन में परिवर्तन (विलासितापूर्ण जीवनशैली के कारण रेफ्रिजरेटर, एयर कंडीश्नर, तथा परफ्यूम का वृहद पैमाने

पर उपयोग), धान की खेती के क्षेत्रफल में अभूतपूर्व विस्तार, शाकभक्षी पशुओं की जनसंख्या में वृद्धि, आधुनिक कृषि में रासायनिक खादों का अंधाधुंध प्रयोग आदि कुछ ऐसे प्रमुख कारण हैं जो हरितगृह गैसों के वातावरण में उत्सर्जन के लिए उत्तरदायी हैं.

हरितगृह गैसों में कार्बन डाइऑक्साइड सबसे प्रमुख गैस है, जो आमतौर से जीवाश्म इंधनों के जलने से उत्सर्जित होती है. वातावरण में यह गैस 0.5 % प्रतिवर्ष की दर से बढ़ रही है तथा इसकी तपन क्षमता 1 (इकाई) है. जैव ईंधनों के जलने से प्रतिवर्ष 5 अरब टन से भी ज्यादा कार्बन डाइऑक्साइड का जुड़ाव वातावरण में होता है, जिसमें उत्तरी तथा मध्य अमेरिका, एशिया, यूरोप तथा मध्य एशियन गणतंत्रों का योगदान 90% से भी ज्यादा का होता है. पूर्व-औद्योगीकरण काल की तुलना में वायु में कार्बन डाइऑक्साइड का स्तर आज 31% तक बढ़ गया है. चूंकि वन कार्बन डाइऑक्साइड के प्रमुख अवशोषक होते हैं अतः वनविनाश भी इस गैस की वातावरण में निरंतर वृद्धि का एक प्रमुख कारण है. वातावरण में 20 प्रतिशत कार्बन डाइऑक्साइड जुड़ाव के लिए वनविनाश जिम्मेदार है. वनविनाश के फलस्वरुप 1850 से 1950 के बीच लगभग 120 अरब टन कार्बन डाइआक्साइड की वातावरण में बढ़त हुई है. पिछले 100 वर्षों में कार्बन डाईऑक्साइड की वातावरण में 20 प्रतिशत बढ़ोत्तरी अर्थात 290 से 338PPM पीपीएम (पार्ट्स पर मिलियम) दर्ज की गई है. जिसका ब्यौरा इस प्रकार है. वर्ष 1880 से 1890 के बीच कार्बन डाइऑक्साइड की मात्रा लगभग 290 PPM थी, वर्ष 1980 में इसकी मात्रा 315 PPM, वर्ष 1990 में 340 PPM तथा 2000 में 400 PPM तक बढ़ गई है. ऐसी संभावना है कि वर्ष 2040 तक वातावरण में इस गैस की सान्द्रता 450 PPM तक बढ़ जायेगी. कार्बन डाइऑक्साइड का वैश्विक तपन वृद्धि में 55% का योगदान है. औद्योगीकृत विकसित देश वातावरण में कार्बन डाइऑक्साइड वृद्धि के लिए ज्यादा उत्तरदायी हैं.

मीथेन भी एक अत्यंत ही महत्वपूर्ण हरितगृह गैस है जो 1% प्रतिवर्ष की दर से वातावरण में बढ़ रही है. मीथेन की तपन क्षमता 36 (इकाई) है. यह गैस कार्बन डाईऑक्साइड की तुलना में ज्यादा प्रभावी होती है. पिछले 100 वर्षों में मीथेन की वातावरण में दुगुनी वृद्धि हुई है (7.0 से 15.55 PPM). धान के खेत, दलदली भूमि तथा अन्य प्रकार की

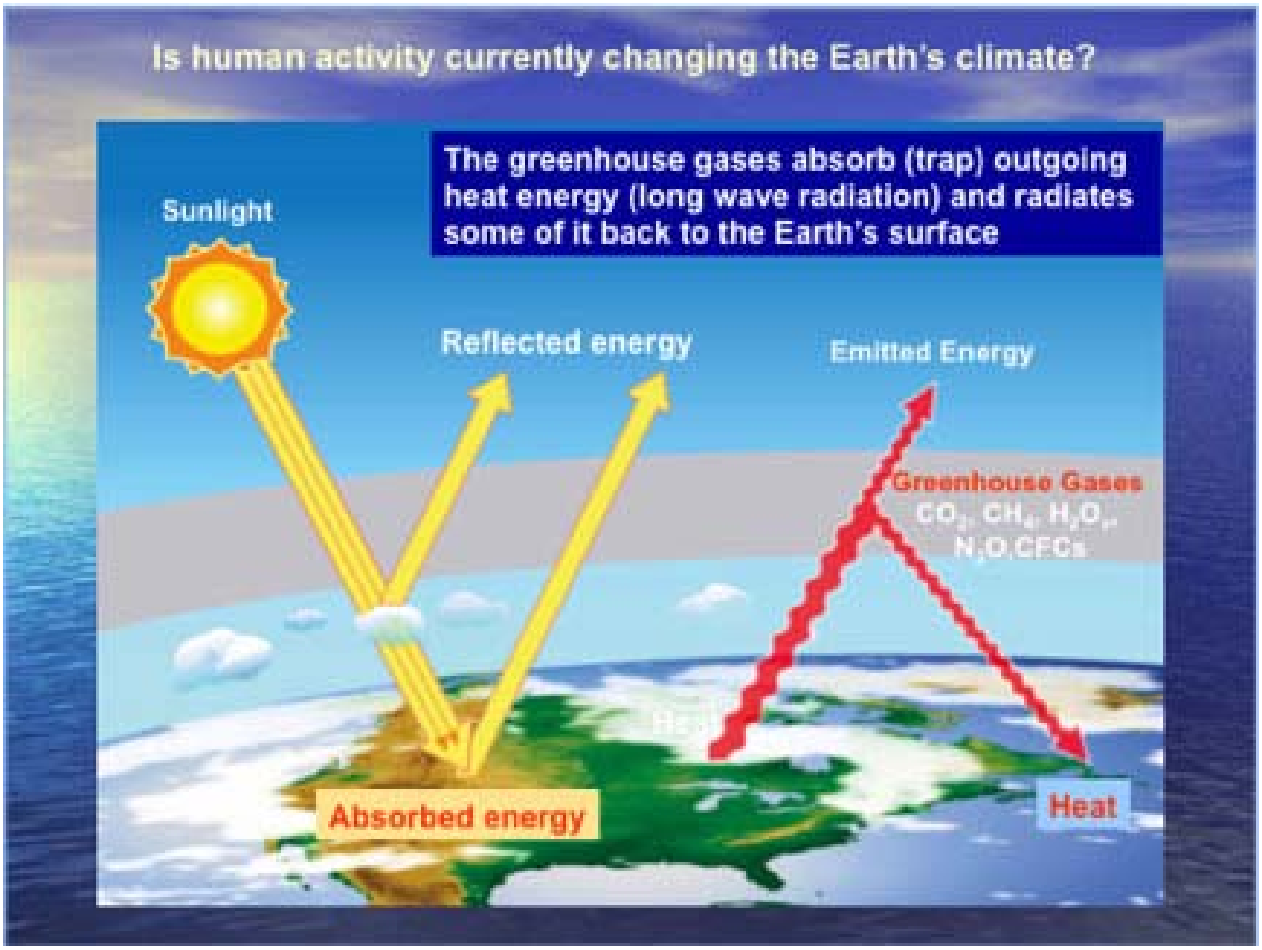

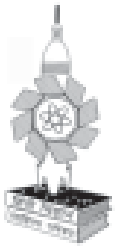

नमभूमियां मीथेन गैस के उत्सर्जन के प्रमुख स्रोत हैं. एक अनुमान के अनुसार वातावरण में 20% मीथेन की वृद्धि का कारण धान की खेती तथा 6% कोयला खनन है. इसके अतिरिक्त शाकभक्षी पशुओं तथा दीमकों में आंतरिक किण्वन (फरमेन्टेशन) भी मीथेन उत्सर्जन के स्रोत हैं. एक अनुमान के अनुसार वर्ष 2050 तक मीथेन एक प्रमुख हरितगृह गैस होगी. विकासशील देश विकसित देशों की तुलना में मीथेन उत्सर्जन के लिए ज्यादा उत्तरदायी हैं.

क्लोरोफ्लोरोकार्बन रसायन भी हरितगृह प्रभाव के लिए उत्तरदायी होते हैं. क्लोरोफ्लोरोकार्बन्स का इस्तेमाल आमतौर से प्रशीतक, उत्प्रेरक तथा ठोस प्लास्टिक झाग के रुप में होता है. इस समूह के रसायन वातावरण में काफी स्थायी होते हैं और यह दो प्रकार के होते हैं - हाइड्रो फ्लोरो कार्बन तथा पर फ्लोरो कार्बन. हाइड्रो फ्लोरो कार्बन की वातावरण में वृद्धि दर 0.4% प्रतिवर्ष है तथा इसकी तपन क्षमता 14600 है. फ्लोरो कार्बन की वार्षिक वृद्धि दर भी 0.4% प्रतिवर्ष है, जबकि इसकी तपन क्षमता 17000 है. हाइड्रो फ्लोरो कार्बन का वैश्विक तपन में 6% का योगदान है जबकि पर फ्लोरो कार्बन का वैश्विक तपन में 12% का योगदान है, औद्योगीकरण के कारण क्लोरोफ्लोरोकार्बन्स की वातावरण में 25% वृद्धि हुई है. विकासशील देशों की तुलना में औद्योगीकृत विकसित देश क्लोरोफ्लोरोकार्बन्स के उत्सर्जन के लिए ज्यादा उत्तरदायी हैं.

नाइट्रस ऑक्साइड गैस 0.3 % प्रतिवर्ष की दर से वातावरण में बढ़ रही है तथा इसकी तपन क्षमता 140 है. जैव ईंधन, जीवाश्म ईंधन तथा रासायनिक खादों का कृषि में अंधाधुंध प्रयोग इसके उत्सर्जन के प्रमुख कारक हैं. मृदा में रासायनिक खादों पर सूक्ष्मजीवों की प्रतिक्रिया के फलस्वरुप नाइट्रस ऑक्साइड का निर्माण होता है. तत्पश्चात यह गैस वातावरण में उत्सर्जित होती है. वातावरण में इस गैस की वृद्धि के लिए 70 से 80 % तक रासायनिक खाद तथा 20 से 30 % तक जीवाश्म ईंधन जिम्मेदार हैं. इस गैस का वैश्विक तपन में 5% का योगदान है. नाइट्रस ऑक्साइड सम तापमण्डलीय ओजोन पट्टी के क्षरण के लिए भी उत्तरदायी है.

जहां तक हरितगृह गैसों के उत्सर्जन का सवाल है वैश्विक स्तर पर भारत मात्र 1.2 टन प्रति व्यक्ति प्रतिवर्ष हरितगृह गैसों का उत्सर्जन करता है, वहीं संयुक्त राज्य अमेरिका प्रतिवर्ष 20 टन से भी अधिक प्रति व्यक्ति हरितगृह गैसों का उत्सर्जन करता है. रुस 11.71 टन, जापान 9.87 टन यूरोपीय संघ 9.4 टन तथा चीन 3.6 टन प्रति व्यक्ति प्रतिवर्ष हरितगृह गैसों का उत्सर्जन करते हैं. जिसका खामियाजा भारत सहित दुनिया के अन्य सभी विकासशील देशों को भुगतना होता है.

जलवायु परिवर्तन से भारत के विभिन्न क्षेत्रों पर संभावित दुष्प्रभाव : संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम (यू.एन.ई.पी.) की वर्ष 2009 में प्रकाशित रिपोर्ट के अनुसार पिछले 100 वर्षों में विश्व के तापमान में 0.74 ^{0}C की बढ़ोत्तरी हुई है. इस शताब्दी का पहला दशक (2000-2009) अब तक का सबसे ऊष्ण दशक रहा है. इंडियन नेटवर्क फॉर क्लाइमेट चेन्ज असेसमेंट की वर्ष 2010 में जारी रिपोर्ट के अनुसार भारत के औसत तापमान में आगामी 20 वर्षों के भीतर 1.7 से 2.2 ^{0}C की बढ़ोतरी का अनुमान है. भारत जैसे उष्णकटिबंधीय देश में जलवायु परिवर्तन के निसंदेह गंभीर परिणाम होंगे. जलवायु परिवर्तन का प्रभाव पर्यावरण, स्वास्थ्य एवं कृषि के साथ-साथ संसाधन एवं ऊर्जा क्षेत्रों पर भी पडेगा. जलवायु परिवर्तन के कारण देश के विभिन्न क्षेत्रों पर पड़ने वाले संभावित दुष्प्रभाव निम्नलिखित हैं.

स्वास्थ्य : भारत जैसे उष्णकटिबंधीय देश में तापमान वृद्धि के कारण मानव स्वास्थ्य पर गंभीर प्रभाव पड़ेगा. जलवायु की उष्णता के कारण ग्रीष्म ऋतु में लू तथा गर्मी से होनेवाली मौतों में वृद्धि होगी. जलवायु परिवर्तन के कारण देश में श्वास तथा हृदय-संबंधी बीमारियों की दर में इजाफा होगा. तपन के कारण उच्च रक्तचाप, मिर्गी तथा माइग्रेन जैसी बीमारियों की आवृत्ति में वृद्धि होगी, साथ ही साथ मानसिक बीमारियों जैसे अवसाद तथा साइजोफ्रेनिया से पड़ने वाले दौरों की आवृत्ति में भी बढ़ोतरी होगी.

रोगाणुओं की नई प्रजातियों के उदभव से पुराने प्रतिजैविक असरहीन हो जायेंगे. जैसे, स्वाइन फ्लू के विषाणु में उत्परिवर्तन के कारण टेमीफ्लू नामक 'प्रतिजैविक' अब इस बीमारी के उपचार में असरहीन साबित हो रहा है. जिससे इस बीमारी का प्रकोप घटने के बजाय दिनोदिन बढ़ता जा रहा है. इसके अतिरिक्त संक्रामक बीमारियों जैसे दस्त, पैचिश, हैजा, क्षयरोग, आंत्रशोथ, पीलिया आदि की बारम्बारता (आवृत्ति) में वृद्धि के फलस्वरूप इन बीमारियों से होने वाली मौतों में वृद्धि होगी. बच्चों में खसरे तथा निमोनिया के प्रकोप में वृद्धि के कारण इन बीमारियों से मृत्युदर में इजाफा होगा. चूंकि तापमान तथा नमी बीमारी फैलाने वाले वाहकों के गुणन में सहायक होते हैं. अतः भारत में मच्छरों से फैलनेवाली बीमारियां जैसे मलेरिया, फ्रील पांव, डेंगू ज्वर, चिकनगुनिया, जापानी मस्तिष्क ज्वर तथा बेस्ट नाइल ज्वर के प्रकोप में वृद्धि होगी. इन मच्छरजनित बीमारियों, विशेषकर मलेरिया का विस्तार देश के पहाडी राज्यों जैसे जम्मू-कश्मीर, हिमाचल प्रदेश तथा उत्तराखण्ड

आदि में होगा. पिछले कुछ वर्षों से डेंगू ज्वर, चिकनगुनिया तथा जापानी मस्तिष्क ज्वर के प्रकोप में वृद्धि दर्ज की गयी है. डेंगू ज्वर आज जहां उत्तर भारत के शहरी क्षेत्रों में प्रमुख स्वास्थ्य समस्या के रुप में उभरा है, वही देश का उत्तर प्रदेश राज्य जापानी मस्तिष्क ज्वर का प्रमुख केंद्र बन गया है. वर्ष 2011 के अंत तक मस्तिष्क ज्वर उत्तर प्रदेश के 35 जिलों में फैल चुका था. उत्तर प्रदेश के अतिरिक्त जापानी मस्तिष्क ज्वर का प्रकोप देश के बिहार, झारखंड तथा असम राज्यों में भी बढ़ा है.

मच्छरों से फैलनेवाली बीमारियों के अतिरिक्त अन्य वाहकों जैसे सी-सी मक्खी तथा बालू मक्खी से फैलनेवाली बीमारियां क्रमशः निद्रा रोग (स्लीपिंग सिकनेस) तथा काला-अजार (ब्लैक फीचर) की बारम्बारता (आवृत्ति) में वृद्धि होगी. जहां काला-अजार असम, पश्चिम बंगाल, बिहार, झारखंड तथा उड़ीसा में प्रमुख स्वास्थ्य समस्या है वही निद्रा रोग मुख्यतः बिहार, झारखंड तथा पश्चिम बंगाल की स्वास्थ्य समस्या है. जलवायु परिवर्तन के फलस्वरुप न सिर्फ उक्त बीमारियों का प्रकोप बढ़ेगा अपितु इनका विस्तार देश के अन्य राज्यों में भी होगा.

एक अनुमान के अनुसार देश में आज लगभग 50 लाख से भी ज्यादा व्यक्ति एड्स विषाणु रोग से ग्रसित हैं. असुरक्षित यौन संबंध इस बीमारी के प्रसार का प्रमुख कारण है. एड्स के अतिरिक्त हिपेटाइटिस-बी, सूजाक तथा सिफलिस, जैसी यौन संचारी बीमारियों के संचार तथा प्रकोप में भी वृद्धि होगी. जलवायु परिवर्तन के फलस्वरुप खाद्यान्न में कमी के कारण देश में कुपोषण की समस्या होगी. परिणामस्वरुप रक्तअल्पता (एनिमिया), रतौंधी, रिकेट्स,मेरेस्मस, क्वासिरकोर, पेलाग्रा, बांझपन जैसी गैर-संक्रामक बीमारियों की दर में वृद्धि होगी. कुपोषण के कारण बच्चों की मृत्यु दर में अभूतपूर्व वृद्धि होगी. कुपोषण से प्रभावित जनसंख्या संक्रामक बीमारी क्षयरोग के प्रति संवेदनशील होगी. परिणामस्वरूप क्षयरोग के प्रकोप में अभूतपूर्व वृद्धि होगी. वर्तमान में भारत में लगभग 1.5 करोड़ क्षयरोगी हैं, जो दुनिया में क्षयरोगियों की संख्या के एक तिहाई से भी ज्यादा है. प्रत्येक वर्ष 20,000 से 25,000 भारतीय क्षयरोग से पीड़ित होते हैं और इस बीमारी से 1,500 से भी ज्यादा लोगों की मृत्यु होती है.

कृषि : जलवायु परिवर्तन के परिणामस्वरुप मुख्य फसलों जैसे गेहूं (ट्रीटीकम एस्टिवम) तथा धान (ओराइजा सेटाइवा) के पैदावार में कमी आयेगी. मक्का (जिला मेज) एवं ज्वार (सोरधम वलगेयर) जैसी मोटे अनाज वाली फसलों की पैदावार में भी कमी आयेगी. उष्णता के कारण गेहूं की पोषकीय गुणवत्ता पर भी विपरीत प्रभाव पड़ेगा. गेहूं के दानों में विशेषरुप से प्रोटीन की कमी होगी. जलवायु की तपन के परिणास्वरुप देश के वर्षा सिंचित क्षेत्रों में मुख्य फसलों के उत्पादन में लगभग 125 से 130 मिलियन टन तक की कमी आयेगी.

जलवायु परिवर्तन क़े कारण देश के हिमालयी क्षेत्र में सेब (पाइरस मैलस) के उत्पादन में गिरावट होगी.

जलवायु परिवर्तन के फलस्वरुप भारत जैसे उष्णकटिबंधीय देश में कीटों तथा रोगाणुओं की जनसंख्या में अभूतपूर्व वृद्धि

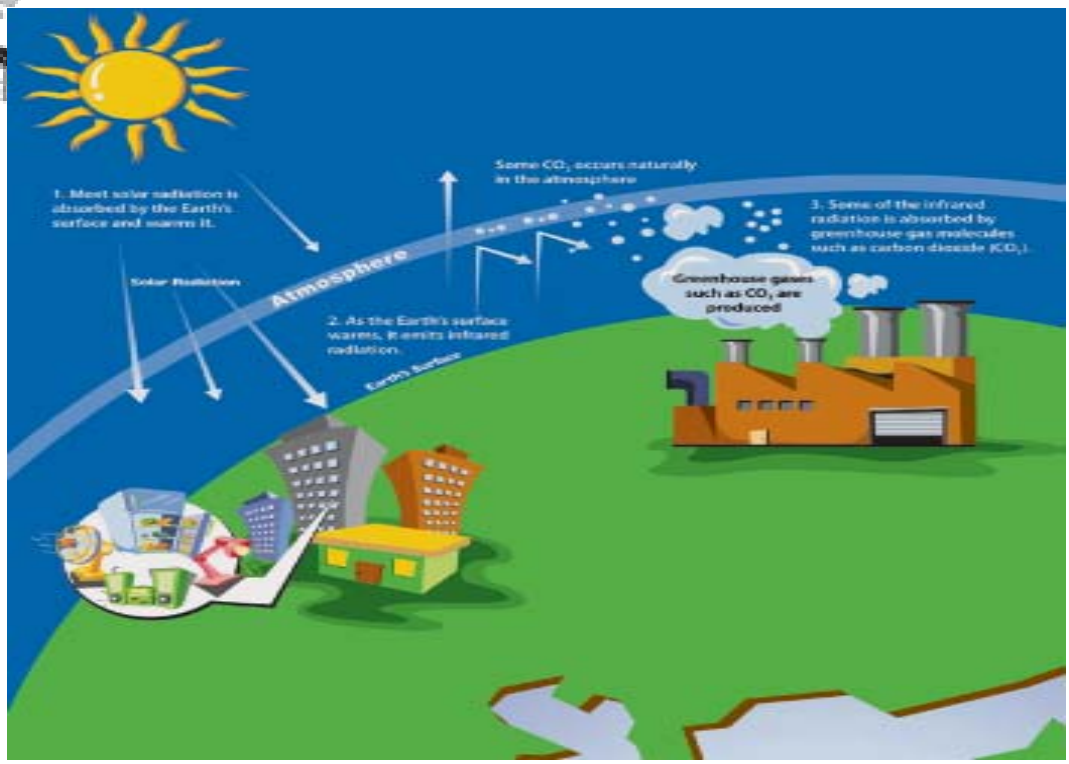

होगी, साथ ही कीटों तथा रोगाणुओं की नई प्रजातियां भी विकसित होगी. इन कीटों तथा रोगाणुओं द्वारा फसलों पर आक्रमण के फलस्वरुप उत्पादन में गिरावट आयेगी. कीट संक्रमण के प्रति संवेदनशील कपास (गासिपियस हरसुटम, गासिपियम आरबोरियम तथा गासिपियम बारबाडेस) जैसी नकदी फसल पर इसका सर्वाधिक प्रभाव पड़ेगा. फसल उत्पादन में बढ़ोत्तरी हेतु कीटनाशकों पर निर्भरता बढ़ेगी.

जलवायु परिवर्तन तथा वातावरण में कार्बन डाइऑक्साइड की वृद्धि के कारण खरपतवारों की जनसंख्या में वृद्धि होगी, जिससे फसल उत्पादकता प्रभावित होगी. पौधों के पुष्पीय कुलों विशेषकर पोयेसी, साइप्रेसी, फैबेसी, यूफोर्बिएसी, एस्केलपिडेसी, अमरेन्थेसी, कैसुलेसी, ऐजोएसी, लिलीएसी एवं पार्टुलैकेसी से संबद्ध खरपतवारों का प्रकोप औरों की तुलना में ज्यादा होगा. फसलों की खरपतावारों से सुरक्षा के लिए खरपतवारनाशकों अथवा शाकनाशकों पर निर्भरता में अभूतपूर्व वृद्धि होगी.

जलवायु की तपन के कारण मृदा में जीवांशधारी पदार्थों की विघटन की दर में भी वृद्धि होगी, लेकिन वाष्पीकरण की दर में वृद्धि के फलस्वरुप मृदा में नमी की कमी के कारण परिणाम उल्टा भी हो सकता है. दोनों ही स्थितियों में पोषक चक्र की दर प्रभावित होगी जिससे मृदा की उर्वरा शक्ति पर विपरीत प्रभाव पड़ेगा.

जलवायु परिवर्तन का प्रत्यक्ष प्रभाव वर्षा की मात्रा एवं वितरण पर भी पड़ेगा. वर्ष 2030 तक संपूर्ण देश में होने वाली वर्षा में बढ़ोत्तरी होगी. हिमालय क्षेत्र में वर्षा में सर्वाधिक वृद्धि होगी. जबकि तटीय इलाकों में न्यूनतम वृद्धि होगी. सभी क्षेत्रों के लिए अत्यधिक वर्षा वाले दिनों की संख्या 5-10 दिनों का इजाफा होगा, वहीं दूसरी ओर देश के पूर्वोत्तर राज्यों में सूखे की स्थिति होगी. दोनों ही स्थितियों में फसल की पैदावार प्रभावित होगी. देश के सभी भागों में आने वाली बाढ़ की तीव्रता में 10 से 30 % की वृद्धि हो सकती है जिसका प्रत्यक्ष प्रभाव फसल पैदावर पर पड़ेगा.

जलवायु परिवर्तन क़े फलस्वरुप ध्रुवीय बर्फ तथा हिमनदियों (ग्लेशियर्स) के पिघलने से समुद्री जलस्तर में वृद्धि होगी, जिसके कारण उड़ीसा, आंध्र प्रदेश, तमिलनाडु, केरल, कर्नाटक, महाराष्ट्र, गोवा, गुजरात तथा पश्चिम बंगाल राज्यों के तटीय क्षेत्र प्रभावित होंगे. परिणामस्वरुप जल-जमाव, मृदा की लवणता तथा क्षारीयता जैसी समस्यायें पैदा होगी. जिससे तटीय क्षेत्र बंजर भूमि में तब्दील हो जायेंगे और इसका सीधा प्रभाव फसल उत्पादन पर पड़ेगा.

जलवायु परिवर्तन का प्रभाव देश की फसल पद्धति पर भी पड़ेगा. उत्तर तथा मध्य भारत का ज्यादातर क्षेत्रफल दलहनी फसलों तथा मिलेट्स (मोटे अनाज वाली फसलें) जैसे-ज्वार (सोरघम वलगेयर), बाजरा (पेनिसिटम

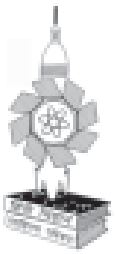

टाइफाइडिस) तथा रागी (इलुसिन कोरकेना) के अधीन होगा वही उत्तर भारत के मैदानी क्षेत्रों में गेहूं (ट्रीटीकम एस्टीवम) के क्षेत्रपल में गिरावट आयेगी. धान उगानेवाले देश के पूर्वात्तर राज्यों में इस फसल के क्षेत्रफल में अभूतपूर्व कमी होगी.

जलवायु की तपन के फलस्वरुप फसलों की कुछ चुनिंदा तापरोधी, सूखारोधी, रोगरोधी तथा कीटरोधी किस्मों की वृहद पैमाने पर खेती के कारण फसल विविधता पर भी प्रभाव पड़ेगा, जिससे पौष्टिक देसी किस्में विलुप्त हो सकती हैं. परिणामस्वरुप आनुवांशिक क्षय की प्रक्रिया में वृद्धि होगी. खरपतवारों के वर्चस्व के कारण फसलों की जंगली प्रजातियां भी विस्थापित हो जायेंगी, जिससे फसल सुधार कार्यक्रम पर विपरीत प्रभाव पड़ेगा.

जलवायु परिवर्तन के फलस्वरुप हिमालय की हिमनदियों के पिघलने के कारण गंगा, ब्रह्मपुत्र, सतलज, रावी, व्यास आदि नदियों का अस्तित्व खतरे में आ जायेगा.

जलवायु परिवर्तन के कारण प्राकृतिक आपदाओं जैसे आंधी, समुद्री तूफान, अल निनों तथा सूखा के प्रकोप में बढ़ोतरी के फलस्वरुप फसल उत्पादन पर विपरीत प्रभाव पड़ेगा.

तपन के परिणामस्वरुप रोगाणुओं की जनसंख्या में वृद्धि के साथ-साथ नयी प्रजातियों के उदभव के कारण देश के पशुधन आबादी पर भी विपरीत प्रभाव पड़ेगा. हरे तथा सूखे चारे की कमी के कारण भी पशुधन प्रभावित होगा. परिणामस्वरुप दुग्ध उत्पादन में कमी होगी.

पारिस्थितिकी एवं पर्यावरण : जलवायु परिवर्तन के कारण बंगाल की खाड़ी में जल स्तर में वृद्धि होगी, जिसके परिणामस्वरुप जैव-विविधता संपन्न मैन्ग्रुव पारितंत्र नष्ट हो जायेंगे. वैज्ञानिकों के अनुसार वर्ष 2030 तक भारतीय समुद्री तटों के जलस्तर में 1.3 मिमी. की वार्षिक वृद्धि होगी. जलस्तर में वृद्धि के कारण अनेक द्वीप समूहों के भी जलमग्न होने की संभावना है. परिणामस्वरुप जैव-विविधता की वृहद पैमाने पर क्षति होगी. सागर जल की तपन के कारण मूंगे का द्वीप लक्षद्वीप, मूंगा विरंजन (कोरल ब्लीचिंग) का शिकार होकर नष्ट हो सकता है. वैश्विक तपन से हिमालय की वनस्पतियां विशेष रुप से प्रभावित होगी जिससे जैव-विविधता क्षय का खतरा बढ़ेगा.

रासायनिक उर्वरकों पर निर्भरता के कारण मृदा की सूक्ष्मजीवी जैव-विविधता पर विपरीत प्रभाव पड़ेगा. इसके अतिरिक्त उर्वरकों के अंधाधुंध प्रयोग से मृदा की संरचना नष्ट होगी, जिससे मृदा क्षरण को बढ़ावा मिलेगा. परिणामस्वरुप बंजर भूमि क्षेत्रफल में विस्तार होगा. रासायनिक कीटनाशकों तथा उर्वरों से जल प्रदूषित होगा. सतही तथा भूमिगत जल के प्रदूषण का गंभीर खतरा होगा. अतिपोषण (यूट्राफिकेशन) से प्रभावित नमभूमियां (जो जैव-विविधता की संवाहक होती हैं) स्थलीय परितंत्र में परिवर्तित हो जायेंगी जिससे जैव-विविधता का क्षय होगा.

जलवायु की तपन के परिणामस्वरुप वनों में आग लगने की घटनाओं में वृद्धि होगी. फलस्वरुप वन क्षेत्रफल में गिरावट के कारण पारिस्थितिक असंतुलन का गंभीर खतरा पैदा होगा. वनों के क्षरण के परिणामस्वरुप जैव-विविधता क्षय की दर में भी अभूतपूर्व वृद्धि होगी.

संसाधन : जलवायु परिवर्तन का देश के संसाधनों पर विपरीत प्रभाव पड़ेगा. वैश्विक तपन से वनों से आग लगने के कारण वन जैसे महत्वपूर्ण जैविक संसाधन नष्ट हो जाएंगे. रासायनिक खादों पर निर्भरता के कारण मृदा अपरदन की दर में वृद्धि होगी जिसके फलस्वरुप मृदा जैसे महत्वपूर्ण संसाधन का क्षय होगा. जलवायु परिवर्तन के परिणामस्वरुप हिमनदियों के पिघलने के कारण हिमालय से निकलनेवाली नदियों का अस्तित्व संकट में आ जाएगा.फलस्वरुप जल संसाधनों से अभूतपूर्व कमी होगी. शीतलन हेतु अधिक ऊर्जा की मांग के कारण कोयलें जैसे महत्वपूर्ण खजिन संसाधन समाप्त हो जायेंगे.

ऊर्जा : जलवायु परिवर्तन का सर्वाधिक प्रभाव ऊर्जा क्षेत्र पर पड़ेगा. वातावरण में तपन के कारण शीतलन हेतु ज्यादा ऊर्जा की आवश्यकता होगी. ग्रीष्म ऋतु में गर्मी से बचाव के लिए ऊर्जा खपत में अभूतपूर्व वृद्धि होगी. जिससे ऊर्जा की समस्या पैदा होगी. ऊर्जा की कमी के कारण देश के उद्योग-धंधे, परिवहन, शोध, चिकित्सा आदि पर विपरीत प्रभाव पड़ेगा.

निष्कर्ष : जलवायु परिवर्तन का प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष प्रभाव देश के स्वास्थ्य, कृषि, पर्यावरण, ऊर्जा तथा संसाधन क्षेत्रों पर पड़ेगा. जलवायु परिवर्तन के फलस्वरुप क्षयरोग, एड्स, हिपेटाइटिस बी, दस्त, पेचिश, हैजा, पीलिया, खसरा, निमोनिया, मलेरिया, डेंगू, ज्वर, जापानी मस्तिष्क ज्वर, काला-अजार, निद्रा रोग जैसी संक्रामक बीमारियों के प्रसार तथा बारम्बारता में वृद्धि के कारण इन बीमारियों से होने वाली मौतों में कई गुना इंजाफा होगा. जलवायु परिवर्तन के फलस्वरुप गेहू (ट्रीटीकम एस्टीवम), तथा धान (ओराइजा सेटाइवा), जैसी मुख्य फसलों के साथ-साथ अन्य फसलों की पैदावार में भी कमी आयेगी. आनुवांशिक क्षय में वृद्धि के कारण फसल सुधार कार्यक्रम पर विपरीत प्रभाव पड़ेगा. जलवायु परिवर्तन के कारण जैव-विविधता का क्षरण होगा, सतही एवं भूमिगत जल प्रदूषित होंगे तथा बंजर भूमि क्षेत्रफल में अभूतपूर्व विस्तार होगा.

शैवालों से जैव-ईंधन

- डॉ. दिनेश मणि, डी.एस-सी. -
पूर्व संपादक, 'विज्ञान' मासिकपत्रिका, 35/3, जवाहर लाल नेहरू रोड, जार्ज टाउन, इलाहाबाद-211002

वर्तमान में शैवालों से भी बायोडीजल व अन्य विभिन्न प्रकार के जैव ईंधन तैयार किये जा रहे हैं. शैवाल शीघ्र उगने वाले सूक्ष्मजीवी पौधे हैं. ये प्रकाश संश्लेषण क्रिया के द्वारा पानी, कार्बन डाई ऑक्साइड तथा सूर्य के प्रकाश में कार्बोहाइड्रेट व लिपिड का निर्माण करते हैं. आज पूरे विश्व में शैवालों की 40,000 से भी अधिक प्रजातियां पहचानी जा चुकी हैं.

शैवाल प्रतिकूल परिस्थिति में भी आसानी से उगते हैं. शैवालों की कुछ प्रजातियां अधिक लवणीय पानी में भी उग आती हैं. इन्हीं विशेषताओं के कारण गंदे पानी के शुद्धीकरण में इन शैवालों का उपयोग किया जा रहा है. इन सभी गुणों

सुक्ष्म शेवाल पादप

के अलावा ये पादप अन्य पौधों की तुलना में वातावरण की कार्बन डाई ऑक्साइड को तीव्र गति से कम करने में सहायक हैं. इनका उपयोग अत्यधिक कार्बनडाइ ऑक्साइड उत्सर्जन करने वाली औद्योगिक इकाइयों के आसपास किया जा सकता है.

सुक्ष्मगत जीव शैवाल प्राणी मात्र के लिए एक अति उपयोगी पादप समूह है. इसमें एक कोशिकीय (क्लेमाइडोमोनास) से लेकर बहुकोशिकीय (कॉलपेणा) पादपों की करीब 20,100 जातियां उपलब्ध हैं. वैसे तो यह पादप वर्ग सर्वव्यापी है, लेकिन स्वच्छ जल समुदाय (तालाब, पोखर, झरना) और खारे जल (समुद्र) में इनकी उपस्थिति अधिक होती है.

आज कल कुछ शैवालीय प्रजातियों जैसे स्पाइरोगायरा, क्लोरेला, बॉट्रीकोकस, सेनिडेसमस इत्यादि से बायोडीजल उत्पादन पर शोध हो रहा है. जितनी आसानी से उच्च पादपों से बायो डीजल निकाला जाता है, उतनी ही आसानी से हम शैवालों से भी बायो-डीजल प्राप्त कर सकते हैं. क्योंकि उच्च पादपों के अनुपात में शैवालों की वृद्धि दर अत्यधिक तीव्र है. उच्च पादपों की वृद्धि जटिल है, जैसे, पादप की वृद्धि, फूल-फल, बीज बनने में तीन साल से अधिक का समय लग जाता है, वहीं शैवाल को साधारण से कृत्रिम तालाब में संवर्धित तरीके से दो या तीन महीने पश्चात सीधे निकाल सकते हैं और इनसे अधिक मात्रा में तेल भी निकलेगा.

शैवालों का संवर्धन माध्यम द्वारा जैव-भार (बायोमास) बनाकर लकड़ी की जगह इसे जलाऊ रूप में, कण्डों में मिलाकर प्रयोग कर सकते हैं जैसे स्पाइरोगायरा, राइजोक्लोनियम. बड़े-बड़े समुद्री शैवालों को सुखाकर ईंधन के रूप में जलाया जाता है. ऐसा अनुमान है कि भूमिगत पेट्रोलियम या कच्चा तेल काफी हद तक समुद्री शैवालों से ही प्राप्त होता है. यदि इस दिशा में अच्छी तरह से शोध किया जाय तो ऊर्जा संकट के समाधान में पर्याप्त सहायता मिल सकती है.

स्पाइरोगायरा नामक शैवाल (जिसे जलीय रेशम भी कहा जाता है) में 40 प्रतिशत तक वसा पाई जाती है, जिसे बायोडीजल के रूप में उपयोग करने की अपार संभावनाएं हैं. इस शैवाल के लंबे-लंबे तंतु एक साथ मिलकर गुच्छे का निर्माण करते हैं तथा ये जलीय सतह पर तैरते हुए नजर आते हैं.

अम्लीय मिट्टी में हरित शैवाल तथा क्षारीय मिट्टी में नील-हरित शैवाल की बहुलता होती है. जिस मिट्टी में फास्फेट तथा नाइट्रेट की अधिकता होती है उसमें डॉयटम मुख्य रूप से पाये जाते हैं. ये हरे होने के कारण स्वपोषित

होते हैं, अतः सूर्य के प्रकाश में कार्बन डाई ऑक्साइड तथा जल की सहायता से अपना भोजन स्वयं बनाते हैं. वस्तुतः खाद्य संश्लेषण की प्रक्रिया (जिस पर संसार के सभी जीव निर्भर हैं) पूर्णतः पौधों की प्रकाश संश्लेषण क्रिया पर आधारित होती है, जिसका 90 प्रतिशत भाग शैवाल वर्ग के पादपों द्वारा संपन्न होता है.

भारत में विशाल समुद्रतटीय और ज्वारनदमुखी क्षेत्र है, जहां उथले समुद्र में समुद्री सूक्ष्म शैवालों की खेती की जा सकती है. इसलिए हमें जैवमास उत्पादन के लिए सूक्ष्मजीव संवर्धन स्थापित करने के लिए व्यापक कार्य करने की जरूरत है. भारत में अभी इस दिशा में बहुत कम प्रयत्न हो रहा है. अतः यह समीचीन होगा कि समुद्री पर्यावरण में नाइट्रोजन यौगिकीकरण करने वाले या शीघ्रता से बढ़ने वाले सब सूक्ष्म जीवों की बड़ी संख्या में संवर्धन के लिए इन तीन मुख्य लक्ष्यों को ध्यान में रखकर सर्वेक्षण और चयन द्वारा उपयुक्त प्रणाली विकसित करने के उद्देश्य से अनुसंधान कार्यक्रम प्रारंभ किया जाए. **कुछ शैवालों में बिना संयुक्त नाइट्रोजन की जरूरत के भी समुद्री जल में संवर्धन की योग्यता है.**

नीलहरित शैवालों की कुछ जातियों को नगरीय मल जल युक्त तालों में आसानी से लगाया जा सकता है. ऐसे जल में विद्यमान विभिन्न तत्वों का अवशोषण करके ये शैवाल बड़ी तेजी से बढ़ते हैं. इस प्रकार एक ओर तो ये जल का शुद्धिकरण करते हैं वहीं दूसरी ओर इनसे बायोगैस के उत्पादन के लिए फसल भी तैयार होती रहती है. इन शैवालों को इकट्ठा करके मीथेन जीवाणुओं द्वारा पचाकर आसानी से बायोगैस प्राप्त की जा सकती है. बर्कले स्थित कैलीफोर्नियां विश्वविद्यालय के वैज्ञानिकों द्वारा इस दिशा में सफल प्रयोग किए गए हैं. शैवालों की वायुरोधी कक्षों में मीथेन जीवाणुओं द्वारा पचाने पर उनके प्रत्येक पौंड (ज्वलनशील ठोस पदार्थ) से, जो कुल ठोस पदार्थ का लगभग 85 प्रतिशत होता है, 6 से 8 घन फुट बायो गैस प्राप्त होती है जिसमें 60 से 80 प्रतिशत मीथेन होती है.

स्थल पर तथा स्वच्छ जल में उगने वाली वनस्पतियों के अतिरिक्त कतिपय समुद्री पौधों का भी इस कार्य के लिए उपयोग किया जा सकता है. तेजी से बढ़ने तथा आसानी से एकत्रित किए जा सकने वाले मैक्रोसिस्टिस, लेमिनेरिया, एक्लेनिया तथा खरगासम जैसे समुद्री शैवाल इसके लिए बहुत उपयुक्त होंगे. सागर के विशाल तटीय क्षेत्र को समुद्री फार्मों के रूप में विकसित कर इनकी व्यापक पैमाने पर खेती की जा सकती है. सागर की सतह पर खेती करने में

जैव-ईंधन के लिये शैवालों की खेती

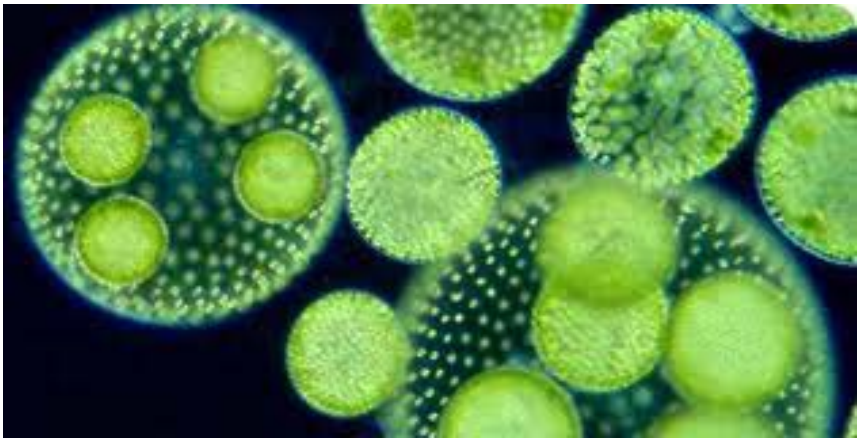

शेवाल पादप प्रजाति

दो मुख्य कठिनाइयां सामने आती हैं. प्रकाश संश्लेषण के लिए आवश्यक सूर्य का प्रकाश जल की ऊपरी परतों तक ही पहुंच पाता है और पोषण के लिए आवश्यक खनिज जल की निचली गहरी परतों में एकत्र होते रहते हैं. इस समस्या को हल करने में अब काफी सफलता मिल चुकी है. सागर की तली से पोषक तत्वों को पम्पों की सहायता से जल की ऊपरी परतों तक लाने के सफल प्रयास किए गए हैं.

इन पौधों की खेती के लिए नायलन के रस्सों या जालों का उपयोग किया जा सकता है. खुले समुद्र या तटवर्ती जल के उपयुक्त भागों में इन पौधों को रस्सों या जालों के सहारे वांछित गहराई पर लटका दिया जाता है. समुद्र की लहरों अथवा वायु की गतिज ऊर्जा द्वारा चालित एक पम्प की सहायता से समुद्र की निचली परतों से पोषक पदार्थों से युक्त जल पौधों तक पहुंचाया जाता है. बायो गैस के उत्पादन के लिए पौधों को धारण करने वाले ये रस्से या जाल उत्पादन केंद्रों तक ले जाए जाते हैं. जहां विशेष यंत्र द्वारा मूल पौधों को क्षति पहुंचाए बिना उनसे पुंगियां काट लेते हैं. मूल पौधों से युक्त रस्से पुनः समुद्र में लटका दिए जाते हैं जहां उनसे दूसरी फसल तैयार होती है. एक पौधे से वर्ष में प्रायः चार फसलें ली जा सकती हैं. उत्पादन केंद्र पर मीथेन जीवाणुओं की सहायता से इनका पाचन किया जाता है जिससे बायो गैसें तथा अन्य उपोत्पाद प्राप्त होते हैं.

हमारे देश में बायों गैस के उत्पादन के लिए भारतीय समुद्रों में बहुतायत से पाया जाने वाला शैवाल तरगातम विशेष उपयोगी होगा. राष्ट्रीय समुद्र विज्ञान अनुसंधान संस्थान की एक रिपोर्ट के अनुसार केवल महाराष्ट्र के समुद्र तटीय जल में उगने वाले समुद्री शैवालों का वार्षिक उत्पादन लगभग तीन हजार टन (शुष्क भार) है जिससे काफी मात्रा में बायोगैस प्राप्त की जा सकती है.

हरित शैवाल-क्लेमाइडोमोनास, नील हरित शैवाल जैसे-नोस्टॉक, एनाबिना, प्लेक्टोनीमा, सिनेकोकस में हाइड्रोजिनेज एन्जाइम उपस्थित होता है, जिसमें हाइड्रोजन को प्रग्रहण करने की क्षमता होती है जिसे ऊर्जा के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है.

टिप्पणी

1.क्यों आता है बुढ़ापा?

बुढ़ापा मानव जीवन का एक अभिशाप है जिससे प्रत्येक व्यक्ति डरता है. यही कारण है कि वैज्ञानिक तथा चिकित्साविद लोग बहुत लंबे समय से बुढ़ापे को यथा संभव दूर रखने के उपाय ढूंढ़ने का प्रयास करते आये हैं. भारत में काफी प्राचीन काल से ही इस दिशा में प्रयास किये जाने के उल्लेख हमारे प्राचीन ग्रंथों में मिलते हैं. महर्षि च्यवन की कहानी भी काफी प्रसिद्ध है. कहा जाता है कि देवताओं के वैद्य अश्विनीकुमार ने एक ऐसी औषधि तैयार की थी जिसका सेवन कर महर्षि ज्यवन बूढ़े से जवान हो गये थे.

बुढ़ापे को दूर रखने की दिशा में संसार भर के वैज्ञानिक आज भी निरन्तर प्रयास में लगे हुए हैं. हाल ही में संयुक्त राज्य अमेरिका के कुछ वैज्ञानिकों ने शरीर में पाये जानेवाले एक क्रोमोजोम के सिरे पर स्थित एक विशिष्ट प्रकार के छोटे से क्षेत्र की पहचान की है जिसका नाम 'टेलोमीयर' रखा गया है. इन वैज्ञानिकों ने पता लगाया है कि प्रत्येक कोशिका सौ बार अपना प्रतिरूप बनाने के बाद अपने टेलोमीयर को खो देती है. इसके कारण कोई भी व्यक्ति बुढ़ापे की ओर अग्रसर होने लगता है. शरीर में स्थित कोशिकायें ज्यों-ज्यों अपना टेलीमीयर खोती जाती हैं, त्यों-त्यों व्यक्ति अधिक से अधिक वृद्ध होता जाता है. जो कोशिका अपना टेलोमीयर खो देती है, वह अपना प्रतिरूप बनाने की क्षमता भी खो देती है. अनुसंधानों से यह भी पता चला है कि कोशिका अपना टेलोमीयर खोने के बाद ऐसे प्रोटीन का निर्माण करने लगती है जिसके कारण शरीर में क्षय की क्रिया आरंभ हो जाती है. क्षय की क्रिया प्रारंभ होने के कारण ही शरीर पर धीरे-धीरे बुढ़ापा आने लगता है.

वैज्ञानिकों द्वारा आशा व्यक्त की गयी है कि यदि किसी विधि द्वारा टेलोमीयर क्षति को रोका जा सके तो बुढ़ापे के आगमन पर भी लगाम लगई जा सकती है. साथ ही साथ इससे आयु को भी बढ़ाया जा सकता है. इस लक्ष्य की प्राप्ति की दिशा में प्रथम चरण के रूप में वैज्ञानिकों ने टेलोमीयर की रक्षा करनेवाले एक एंजाइम की खोज करने में सफलता प्राप्त कर ली है. वैज्ञानिकों द्वारा टेलोमीयर परिरक्षक इस एंजाइम का नाम 'टेलोमिरेज' रखा गया है वैज्ञानिकों को आशा है कि बहुत निकट भविष्य में ही संसार के विभिन्न दवा निर्माताओं द्वारा इस टेलोमीयर परिरक्षक

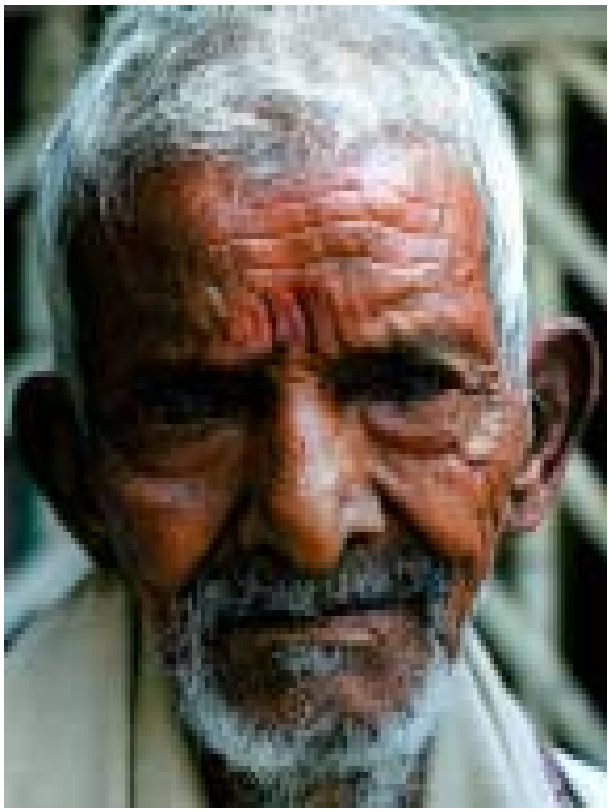

एंजाइम का उत्पादन प्रारंभ कर दिया जायेगा तथा जन साधारण के लिए यह बाजार में उपलब्ध हो जायेगा.

वैज्ञानिक लोग अपने शोधों द्वारा ऐसी औषधि या आहार की खोज में लगे हुए हैं, जिसके सेवन के फलस्वरूप न सिर्फ बुढ़ापे की ओर अग्रसर होने की गति धीमी पड़ जायेगी, अपितु बुढ़ापे से जवानी की ओर वापस लौटने की प्रक्रिया भी शरीर में प्रारंभ हो जायेगी. साथ ही साथ ऐसा आहार शरीर में रोगों की उत्पत्ति तथा उसकी वृद्धि को भी नियंत्रित करेगा. कुछ विशेष प्रकार के हारमोन से युक्त दवा अथवा आहार का उपयोग इस दिशा में काफी लाभदायक सिद्ध हुआ है. इसी प्रकार की एक दवा है डी.एच.ई.ए.यह हार्मोन शरीर के आड्रेनल ग्लैंड में स्वाभाविक रूप से उत्पन्न होता है. वस्तुतः यह हार्मोन शरीर में यौन हार्मोन (एस्ट्रोजेन तथा टेस्टोस्टेरॉन) की उत्पत्ति का अग्रसूचक है. शरीर में इनका स्तर ढलती उम्र के साथ गिरने लगता है. संयुक्त राज्य अमेरिका में ढलती उम्र के लोगों द्वारा कृत्रिम डी.एच.ई.ए.का उपयोग काफी अधिक लोकप्रिय हो गया है. इस औषधि के उपयोग से कई प्रकार के लाभ स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर हो रहे हैं. जिन समस्याओं में लाभ होता दिखाई पड़ रहा है

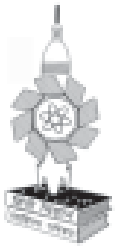

उनमें शामिल है चिड़चिड़ापन तथा मानसिक तनाव में कमी, शारीरिक स्फूर्ति की प्राप्ति तथा यौन क्षमता में वृद्धि इत्यादि. परंतु इस दवा के सेवन से कुछ समस्याएं भी पैदा होती हैं. इसके नियमित सेवन से पौरुष ग्रंथि तथा स्तन में कैंसर उत्पन्न होने की संभावना बहुत अधिक बढ़ जाती है. इन खतरों से बचने के लिए यू.एस.एलायंस फॉर एजिंग रिसर्च ने विटामिन सी, विटामिन ई, तथा बीटा कैरोटीन के नियमित सेवन का परामर्श दिया है. इन दवाओं का नियमित सेवन कैंसर के साथ-साथ हृदय रोग तथा अन्य रोगों से भी सुरक्षा प्रदान करता है.

बुढ़ापे की रोक थाम तथा आयु वृद्धि हेतु उपर्युक्त दवाओं की खोज के साथ-साथ वैज्ञानिक लोग कुछ अन्य प्रयोग भी कर रहे हैं. इन प्रयोगों में प्रमुख है कम तापमान (क्रायोजेनिक्स) संबंधी प्रयोग. कुछ ही समय पूर्व कनाडा में मौंट्रियल स्थित मैकगिल विश्व विद्यालय के सीगफ्रिड हे किमी प्रयोगशाला में निमैटोड नामक कृमियों को बर्फ में परिरक्षित करने संबंधी कुछ प्रयोग किये गये हैं. इन प्रयोगों में पाया गया कि सामान्य तौर पर जहां इन कृमियों की आयु सिर्फ नौ दिनों की होती थी, वहीं बर्फ में परिरक्षित करने पर वे 50 दिनों तक जीवित रहीं.

संयुक्त राज्य अमेरिका में कैलिफोर्निया विश्व विद्यालय के इरविन स्थित माइकेल रोज नामक प्रयोगशाला में किये गये प्रयोगों से पता चला कि फ्रूट फ्लाई जो सामान्य तौर पर 70 दिनों तक जीवित रहता है, वह बर्फ में परिरक्षित किये जाने पर 140 दिनों तक जीवित रहा. कुछ वैज्ञानिकों ने चूहों पर भी प्रयोग किये हैं. इन प्रयोगों में चूहों के हृदय तथा कुछ अन्य अंगों को बर्फ में सफलता पूर्वक परिरक्षित किया जा चुका है तथा उन्हें पुनः चूहों के शरीर में प्रतिरोपित किया जा चुका है. वैज्ञानिकों को आशा है कि अकाल मृत्यु प्राप्त किसी जवान व्यक्ति के शरीर को बर्फ में परिरक्षित कर उसके टेलोमीयर को बचाया जा सकता है. फिर उसके शरीर के टेलोमीयर को किसी वृद्ध व्यक्ति के शरीर में प्रतिरोपित कर उसके बुढ़ापे को दूर किया जा सकता है.

बुढ़ापे को दूर रखने के लिये कई प्रकार के आहार संबंधी प्रयोग भी वैज्ञानिकों द्वारा किये जा रहे हैं. संयुक्त राज्य अमेरिका में बेथेस्डा नामक स्थान पर स्थित नेशनल इंस्टिच्यूट ऑन एजिंग के मोलिक्युलर फिजियोलौजी विभाग में कार्यरत जॉर्ज रौथ नामक वैज्ञानिक का विचार है कि किसी भी व्यक्ति की बुढ़ापे की ओर अग्रसर होने की गति उसके द्वारा ली जानेवाली आहार की मात्रा पर निर्भर करती है. उन्होंने अपने द्वारा चूहों तथा बन्दरों पर किये गये प्रयोगों के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला है कि यदि आहार की मात्रा सामान्य से कुछ कम कर दी जाय, तो बुढ़ापे की ओर अग्रसर होने की गति काफी धीमी हो जाती है. इसकी वजह यह है कि आहार कम मिलने पर शरीर विकास की ओर अग्रसर न होकर अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष की ओर उन्मुख हो जाता है. जितना कम आहार ग्रहण किया जाता है, चयापचय (मेटाबोलिज्म) की गति उतनी ही अधिक धीमी होती है. इसकी वजह से शरीर में विकास की सारी प्रक्रियाये मन्द हो जाती हैं. ऐसी प्रक्रियाओं में कोशिका विभाजन तथा बुढ़ापे की प्राप्ति भी शामिल हैं. कुछ समय पूर्व वैज्ञानिकों ने एक ऐसी विधि खोज निकाली है जिसकी सहायता से बुढ़ापे के कारण शरीर की त्वचा में आनेवाले ढीलेपन तथा झुर्रियों को दूर कर उसमें कसावट तथा लावण्य पैदा किया जा सकता है. इस विधि को 'ग्रेजर ब्रेजन' कहा जाता है. बुढ़ापे में बालों की जड़ों में 'मिलैनिन' नामक पिगमेंट का निर्माण बन्द हो जाता है जिसके कारण बाल सफेद हो जाते हैं. अब वैज्ञानिकों ने प्रयोगशाला में मिलैनिन को कृत्रिम विधि द्वारा तैयार करने में सफलता प्राप्त कर ली है. साथ ही कुछ ऐसी दवाओं का निर्माण कर लिया गया है, जिसके सेवन से बालों की जड़ों में शिथिल पड़ी मिलैनिन निर्माणकारी कोशिकायें एक बार फिर से सक्रिय हो उठेंगी तथा पुनः पिगमेंट का निर्माण शुरु कर देंगी.

- डा.विजय कुमार उपाध्याय -

राजेंद्र नगर हाउसिंग कोलोनी, के.के.सिंह कॉलोनी,
फे.जमगोड़िया, वाया-जोधाड़ीह, चास, जिला-बोकारो,
झारखंड, पिन कोड : 827013

2.सेहत के लिए वरदान अदरक

पारंपरिक चिकित्सा पद्धति और आयुर्वेद में अदरक का उपयोग औषधि के रूप में प्राचीन काल से होता आ रहा है. आयुर्वेद में अदरक को महाऔषधि कहा जाता है. इसका वानस्पतिक नाम जिंजिवर ऑफिसिनेल है. यह उर्वरा तथा रेत मिश्रित भूमि में पैदा होने वाली गुल्म जाति की वनस्पति का कन्द है. अदरक को अंग्रेजी में 'जिंजर' कहते हैं. इसे हिंदी में आदि, अदरक, सोंठ भी कहते हैं. भूमि के अन्दर उगने वाला कन्द जिसे अदरक कहते हैं प्रयोग में लाया जाता है. यह आर्द्र अवस्था में अदरक व सूखी अवस्था में सोंठ कहलाता है. इसके पत्ते बांस के पत्तों से मिलते जुलते दिखते है तथा एक या डेढ़ फीट ऊंचे लगते हैं.

आयुर्वेद में अदरक का सेवन अपच, गैस दूर करने, पेट

दर्द, सूजन दूर करने, पेशाब की मात्रा बढ़ाने, हाजमा ठीक करने, पेट के कीड़े और खांसी आदि के लिए व्यापक रूप से किया जाता है.

ताजी अदरक में 80.9% जल, 2,3% प्रोटीन, 0.9% वसा, 2,4% रेशे और 12.3% कार्बोहाइड्रेट होता है. इसके अतिरिक्त इसमें आयरन, कैल्शियम, लौह फॉस्फेट, आयोडीन, क्लोरीन, खनिज, लवण तथा विटामिन भी पर्याप्त मात्रा में होते है.

सूखी अदरक में 9 से 10% जल 15% प्रोटीन, 3 से 6 % वसा, 3 से 8 % रेशे, 60 से 70% शर्करा तथा उड़नशील तेल 1 से 2% तक होते हैं. अदरक में अनेक अन्य रसायन भी होते हैं जिनमें जिंजर आयल मुख्य हैं. साथ ही अदरक की विशिष्ट महक विभिन्न वाष्पशील तेलों जिसमें आलियोरेसिन मुख्य होता है के कारण होती है.

चीन में अदरक का उपयोग पेट दर्द, दस्त, मितली, हैजा, दमा, हृदय, श्वसन तंत्र के रोगों, दांत दर्द, गठिया, जोड़ों के दर्द इत्यादि के लिए किया जाता है. चीन में पारंपारिक रूप से अदरक का सेवन शरीर के द्रव्य का बहाव सुचारू रूप से बनाये रखने के लिए भी किया जाता है. अदरक पूरे शरीर में रक्त प्रवाह बढ़ा देता है. इसके सेवन से हृदय की मांसपेशियां ज्यादा शक्ति से संकुचित होती है, रक्त वाहिनियां फैल जाती है, जिससे ऊतकों और कोशिकाओं का रक्त प्रवाह बढ़ जाता है और मांसपेशियों की अकड़न, दर्द, तनाव आदि से आराम मिलता है.

आधुनिक वैज्ञानिक शोधों से भी अदरक के लाभकारी प्रभाव की पुष्टि हो गई है. वैज्ञानिको ने अदरक को पाचन तन्त्र, हृदय रोग, संक्रमण, माइग्रेन, जोड़ों के दर्द, कैंसर इत्यादि अनेक रोगों में लाभकारी पाया है.

जापान में हुए शोधों से सिद्ध हुआ है कि अदरक के प्रभाव से रक्तचाप कम हो जाता है, हृदय पर जोर कम पड़ता है. अदरक के प्रभाव से रक्त प्लेटलेट कोशिकाओं का चिपचिपापन कम हो जाता है जिससे रक्त में थक्का बनने की संभावना कम हो जाती है. फलस्वरूप अनेक रोगों, जैसे हृदय आघात, स्ट्रोक (पक्षाघात) इत्यादि से बचाव हो सकता है. अदरक का सेवन करने से कोलेस्ट्राल युक्त भोजन करने के बाद कोलेस्ट्रोल भी स्तर कम बढता है. जापान तथा यूरोपीय देशों में अदरक पर हुई शोधों से पता चला है कि अदरक शरीर में कुछ खास किस्म के जैव रसायनों के निर्माण में सहायता करता है. जो न सिर्फ कुदरती तौर पर घाव के ठीक होने में मदद करते है, बल्कि शरीर के इम्यून सिस्टम को भी बल प्रदान करते है. अदरक खून के थक्के नहीं बनने देता और प्रदाह (सूजन और जलन) से भी बचाए

रखता है.

अदरक में मौजूद सक्रिय तत्व पाचन शक्ति बढ़ाते हैं, जो आंतों में भोज्य पदार्थों के अवशोषण में सहायक होते हैं. कब्ज और गैस से राहत मिलती है, क्योंकि इसके सेवन करने से आंतों की मांसपेशियां सक्रिय हो जाती है. शोधों से ज्ञात हुआ है कि करीब एक ग्राम अदरक सेवन करने से यात्रा के दौरान संवेदनशील व्यक्तियों में होने वाली मितली और उल्टी से आराम मिलता है. इसी प्रकार 250 मिली ग्राम सौठ को दिन में चार बार सेवन करने से महिलाओं को गर्भावस्था के दौरान होने वाली मितली व उल्टी से आराम मिलता है और इसके सेवन करने से कोई दुष्प्रभाव भी नहीं होता है.

जोड़ों, हड़ियों के रोगों के कारण सूजन, दर्द, हाथ पैर चलाने में दिक्कत, पेट के कीड़े और खांसी आदि समस्याएं होने पर अदरक का सेवन से राहत मिलती है. शोधों से ज्ञात हुआ है कि अदरक सेवन करने से सूजन एवं अन्य लक्षण उत्पन्न करने वाले रसायन हार्मोन जैसे प्रोस्टाग्लैंडिन, ल्यूकोट्रिन का उत्पादन कम हो जाता है. डेनमार्क में हुए अध्ययनों से सिद्ध हुआ है कि 0.5 से 1 ग्राम अदरक प्रतिदिन 3 माह तक सेवन करने से आस्टियो आर्थ्राइटिस, रूमेटायड आर्थ्राइटिस तथा मांसपेशियों के दर्द से मरीजों को आराम मिलता है.

अदरक एक शक्तिशाली जीवाणुनाशक भी है. शोधों से ज्ञात हुआ है कि अदरक बड़ी आंतों में पाये जाने वाली बैक्टीरिया का बढ़ना रोक देता है जिसके कारण गैस से

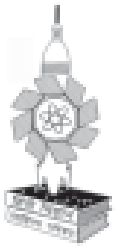

राहत मिलती है. अदरक सेवन करने से अनेक प्रजाति के बैक्टीरिया जो कि दस्त, पेचिस इत्यादि रोग उत्पन्न करते हैं नष्ट हो जाते हैं. अदरक अनाजों में लगने वाले फूफंद को भी नष्ट कर देता है. यह फूफंद जहरीला पदार्थ 'एफ्लेटॉक्सिन' स्रावित करता है जो यकृत में कैंसर पैदा कर सकता है.

देश विदेश में हुए अनेक शोधों से ज्ञात हुआ है कि अदरक में कैंसर से बचाव के गुण विद्यमान होते हैं. अदरक में एंटीऑक्सीडेंट गुण होते हैं. इसके सेवन से कैंसर से बचाव में सहायक एन्जाइम सक्रिय होते हैं. अदरक में 400 से भी ज्यादा ऐसे कम्पाउण्ड (यौगिक) है जो अलग-अलग ढंग से अपना अच्छा प्रभाव शरीर पर डालते हैं.

भारतीय व्यंजनों में अदरक का बहुतायत से उपयोग होता है. इसका सेवन सब्जी, चटनी, अचार, सॉस, टॉफी, पेय पदार्थों, विस्कुट, ब्रेड इत्यादि में स्वाद व खुशबू के लिये किया जाता है. व्यंजन बनाते समय भी अदरक के तेल का उपयोग किया जाता है.

अदरक का भोजन में उपयोग करने से भोजन स्वादिष्ट हो जाता है साथ ही यह स्वास्थ्यवर्धक भी होता है. इसका उपयोग अनेक रोगों के उपचार में किया जाता है. स्वास्थ्य की दृष्टि से भी अदरक द्वारा अनेक लाभ प्राप्त किये जा सकते हैं. इतना अधिक औषधीय गुणों से युक्त होने पर भी लोगों द्वारा इसका उपयोग मुख्यतः मसाले के रूप में ही अधिक किया जाता है.

प्रस्तुत है अदरक के औषधीय गुणों पर एक नजर :

♦ पांच ग्राम अदरक का रस और पांच ग्राम शहद को मिलाकर रोज सुबह पीने से खून की कमी दूर होती है.

♦ अदरक और पुदीने के पत्तों का रस मिलाकर सेवन करने से गले में खराश से राहत मिलती है.

♦ बच्चो के पेट में कृमि होने पर अदरक का रस दिन में दो बार एक-एक चम्मच पिलाने से लाभ होता है.

♦ जुकाम होने पर चाय में अदरक उबाल कर पीना चाहिए. अदरक की चाय में तुलसी के पत्ते व एक चुटकी नमक डाल देने से यह और प्रभावी हो जाता है.

♦ उल्टी या जी मिचलाता हो तो अदरक के रस में पुदीने का रस, नींबू का रस व शहद मिलाकर देना चाहिए. शीघ्र फायदा होता है.

♦ गले में दर्द हो व इन्फलुएंजा हो तो अदरक के रस को नमक व गर्म पानी में मिलाकर गरारे करने चाहिए.

♦ माइग्रेन दर्द का पूर्वाभास होने पर 500-600 मिली ग्राम सोठ का सेवन करने से और फिर प्रत्येक 4 घंटे के अंतराल पर 3 से 4 दिन सेवन करने से माइग्रेन के प्रभाव से बचाव हो जाता है.

♦ अगर खांसी के साथ कफ भी हो तो दस ग्राम पिसी हुई अदरक घी में भूनकर सेवन करने से लाभ मिलता है.

♦ कफ जमने या अन्य किसी वजह से गला दुखता हो तो ऐसे में दस ग्राम अदरक का रस और उतनी ही मात्रा में शहद व हल्दी मिलाकर चाटने से लाभ मिलता है.

♦ खांसी में अदरक का छोटा सा टुकड़ा मुंह में रख कर चूसने से लाभ होता है.

- अनिल कुमार -
क्वार्टर नं.-एफ-80, पोस्ट-सिन्दरी,
जिला - धनबाद-828122

3.मरू क्षेत्र की महत्वपूर्ण औषधीय वनस्पतियां

प्रकृति द्वारा उपलब्ध जड़ी बूटियों का प्रयोग स्वास्थ्य-रक्षा एवं रोगों से इलाज के लिए प्राचीन काल से किया जा रहा है. राजस्थान की परिस्थितियों में परम्परागत फसलों के अतिरिक्त कुछ अन्य फसलों जैसे सोनामुखी, जोजोबा, तुम्बा, अश्वगंधा, गुग्गुल, दूंधी, केर आदि की खेती द्वारा किसान न केवल वर्षा की अनियमिता से होने वाले नुकसान से बच सकते हैं, वरन् उन्हें इससे एक अच्छी आमदनी भी मिल सकती है. इन सभी के अतिरिक्त इन गैर परपंरागत फसलों की खेती से इस क्षेत्र की परती भूमि में हरियाली भी लाई जा सकती है. इस क्षेत्र में बढ़ते जैविक दबाव के चलते यहां की महत्वपूर्ण वनस्पतियां लुप्त होने लगी है, तथा अनियंत्रित दोहन व उपेक्षा से औषधीय पादपों की कई जातियां लुप्त हो चुकी है. बी.सी.आई. द्वारा तैयार की गई संकटग्रस्त पादप प्रजातियों की सूची में राजस्थान से गुग्गल, रोहिडा, अश्वगंधा, फोग आदि का नाम सम्मिलित हो चुका है. भारत के पर्यावरण विभाग ने संकटग्रस्त जातियों पर एक पुस्तक प्रकाशित की है, जिसे लाल आंकड़ों की पुस्तक का नाम दिया गया है, तथा इसके दो खंडों में करीब 450 संकटग्रस्त जातियों के नाम प्रकाशित किये गये है. आधुनिक युग में वनौषधियों की बढ़ती मांग के कारण कई उपयोगी प्रजातियों का अनियत्रिंत दोहन जारी है, जिससे वे भी भविष्य मे लुप्त हो सकती है.

अश्वगंधा :- इसे वानस्पतिक भाषा में 'विथेनिया सोमनीफेरा' कहते है. इसे असगंध या भारतीय जिनसेंग भी कहां जाता है. यह परंपरागत चिकित्सा पद्धति में शक्तिवर्धक

गुणों के लिए प्रयोग में लाया जाता है. राजस्थान के नागौरी अश्वगंधा की संपूर्ण विश्व में मांग है. यह भारत के समस्त शुष्क भागों में बेकार भूमि में हो सकता है. यह औषधीय महत्व की फसल होने के साथ-साथ एक नकदी फसल भी है. यह पादप करीब 100-150 से.मी.लम्बा होता है. इसमें विथेफेरिन नामक ऐल्केलाईड पाया जाता है. इसकी सूखी जड़ों से आर्युवेदिक तथा यूनानी औषधियां बनाई जाती है.

इसे ग्रंथी (गांठ), त्वचा रोगों, फेफडे की सूजन के अलावा कुछ स्थानों पर कमर एवं कूल्हों के दर्द निवारण में भी प्रयुक्त किया जाता है. यह शक्तिवर्धक के रूप में भी उपयोगी है तथा इसी कारण इसे 'भारतीय जिनसेंग' कहा जाता है. इसकी पत्तियां जोड़ों की सूजन, क्षय रोग एवं दुखती आंखों के इलाज में भी प्रयुक्त होती है.

गुग्गुल :- इसे वानस्पतिक भाषा में 'कोमीफेरा मुकुल' कहते हैं. यह रेगिस्तानी सूखे इलाकों एवं पहाड़ों पर मिलता है. राजस्थान में उदयपुर, जैसलमैर, बाड़मेर, सिरोही, जालोर,

जोधपुर आदि अनेक स्थानों पर मिलता है. लगातार दौहन के कारण इसकी संख्या बहुत कम रह गई है. अतः सरकार ने इसको लुप्त होने से बचाने हेतु अजमेर के पास मांगलियावास में एक गुग्गुल फार्म खोला है, वहां से इसकी कटिंग्स या पौधे प्राप्त किए जा सकते है. इसकी आयु लगभग 500 वर्ष तक मानी गई है.

इससे प्राप्त होने वाले गोंद एवं रेजिन में औषधीय ऐल्केलाइड होते है. गुग्गुल कई आयुर्वेदिक औषधियों का मुख्य घटक है, तथा मूत्र उत्सर्जन संबंधी रोगों, गठिया एवं फोड़े - फुन्सियों को पकाने, घावों को भरने वाले मलहमों आदि में प्रयुक्त होता है. इसके अतिरिक्त यह धार्मिक अवसरों पर वातावरण शुद्ध एवं सुगंधित करने में भी प्रयुक्त होता है.

सोनामुखी :- सोनामुखी को पौधा मूलतः अरब देशो से भारत में लाया गया था. तथा इसे वानस्पतिक भाषा में 'केसिया अंगुस्टीफोलिया' कहते है. भारत सोनामुखी के उत्पादन क्षेत्र में अग्रणी है तथा इसको अंतर्राष्ट्रीय बाजार में भारतीय सेना के नाम से जाना जाता है. पश्चिमी राजस्थान के जोधपुर, बाड़मेर, जैसलमैर, बीकानेर व नागौर जिलो में इसकी खेती हो रही है. यह 40-120 सेमी उंचाई वाला पौधा है, जो मुख्यतः शुष्क एवं उष्ण भू क्षेत्रों, जैसे-राजस्थान,

केरल, तमिलनाडु, मध्यप्रदेश, एवं छत्तीसगढ़ आदि में पाया जाता है.

सोनामुखी या सनाय की पत्तियों में सेनोसाइड नामक पदार्थ पाया जाता है. इसकी मात्रा पत्तियों में 2-3% एवं फलियों में 4-5% तक होती है. यह मुख्यतः अपने विरेचक गुणों के कारण उपयोगी है. इसकी पत्तियों का मुख्य उपयोग पेट की बीमारियों व अन्य रोगों से संबंधित दवाओं को बनाने में किया जाता है, जैसे-पीलीया, अस्थमा, अपच, मलेरिया, बुखार इत्यादि. सनाय की फसल को जानवर या पक्षी नुकसान नहीं पहुंचाते तथा यह कम पानी एवं लगभग

हर प्रकार की भूमी में उग सकती है. इसकी खेती में कीटनाशक एवं रसायनिक खाद की भी जरूरत नहीं रहती है.

मेंहदी :- इसे वानस्पतिक भाषा में 'लॉसोनिया इनर्मिस' के नाम से जाना जाता है. मेंहदी एक झाड़ीदार छोटा पादप है जो संपूर्ण भारतवर्ष में पाया जाता है. भारतवर्ष के अतिरिक्त यह पौधा मिश्र, अफ्रीका, अरब, ईरान आदि देशों में भी पाया जाता है. प्राचीनकाल से ही इसका उपयोग श्रृंगार एवं बालों को रंगने के अतिरिक्त इसके फूलों से 'हिना इत्र' बनाने में होता रहा है. मेंहदी एक महत्वपूर्ण औषधीय पादप है.

मेंहदी के पत्तों, छाल, फल और बीजों का उपयोग विभिन्न औषधियों के निर्माण में किया जाता है. मेंहदी कफ पित्त नाशक, शोधहर तथा वृणशोधक गुणों वाली है. इसके पुष्प निद्राजनक, शोधहर और ज्वरग्न होते है. इसके बीज स्तंभक, अतिसार एवं प्रवाहिका में उपयोगी होते है. इसके पत्तों व फूलों से तैयार किया जाने वाला घनसत्व कुष्ठ रोग में उपयोगी है इसके पत्तों का रस कामला में उपयोगी माना जाता है. सिरदर्द पीलिया, व कुष्ठरोग निवारण में भी इसको प्रयुक्त किया जाता है. मेंहदी में लासोन 2 हाइड्रोक्सी, 1,4 नाप्थाक्विनोन व अन्य रसायन पाये जाते है.

घृतकुमारी :-

इसे वानस्पतिक भाषा में 'ऐलोयवेरा' कहां जाता है. इसका मूल स्थान उत्तरी अफ्रीका, कैनेरी द्वीप समूह व स्पेन है. वर्तमान में यह ईस्ट और वेस्ट इंडीज, भारत, चीन तथा अन्य देशों में मिलता है. साधारणतः यह कल्लों द्वारा बोया जाता है. ऐलोय को सुधावर्धक, रेचक तथा आर्तवजनक के

रूप में प्रयोग किया जाता है. ऐलोय की पत्तियों में एलोइन नामक ग्लूकोसाइड समूह होता है. इसके अतिरिक्त अन्य तत्व भी उपस्थित होते है. इसकी पत्तियां लीवर को उत्तेजित करने में, नैत्र रोगों में, पीलिया, व जोड़ों के दर्द में, यकृत व तिल्ली के बढ़ने पर तथा अपचन, कब्ज व पेट में वायु जमा होने पर औषधीय रूप में प्रयुक्त की जाती है. इसके अतिरिक्त इसका उपयोग सौंदर्य प्रसाधनों के निर्माण में भी किया जाता है.

गिलोय :- इसे वानस्पतिक भाषा में 'टिनोस्पोरा कॉर्डिफोलिया' भी कहते है. यह बहुवर्षीय लता पादप है जिसकी पत्तियां हृदयाकार होती है. यह संपूर्ण भारत में मिलता है, तथा गर्म जलवायु के स्थानों में अच्छी वृद्धि करता है. यह अपने औषधीय गुणों के कारण महत्वपूर्ण

पादप है.

गिलोय की जड़, फल, पत्ती का उपयोग औषधीय रूप में किया जाता है. यह त्रिदोष शामक, बलदायक, अग्निदीपक, रक्तशोधक, कृष्ठघ्न, वेदस्थापन, मूत्र स्तन्यशोधन, कृमिनाशक आदि गुणों से युक्त होता है. गिलोय में मुख्य रूप से बर्बेटिन एल्कलोइड एवं गिलोइन ग्लाइकोसाइड पाया जाता है. इसके अतिरिक्त उड़नशील तेल, गिलोस्टेरोल आदि भी पाये जाते है.

खस-खस :- यह भारतीय मूल का पौधा है जिसका वानस्पतिक भाषा में नाम 'वैटीवेरिया जिजेनियोडिस' है. इसकी जड़ों में सुगंधित तेल होता है जो बाजार में खस के तेल के नाम से विख्यात है. यह पौधा संपूर्ण भारतवर्ष में खाली मैदानों, जंगलों व तालाबों के किनारे पाया जाता है. इसकी खेती उत्तरप्रदेश, पंजाब, बिहार, झारखंड, उड़ीसा, आसाम, आंध्रप्रदेश, राजस्थान, केरल, कर्नाटक आदि प्रदेशों में व्यवसायिक स्तर पर हो रही है. भारत के अतिरिक्त यह पौधा अफ्रीका, बांग्लादेश, म्यानमार, चीन, मलाया, नेपाल, श्रीलंका अमेरिका, फिजी, फ्रांस, इंटली आदि देशों में भी पाया जाता है.

खस का तेल विभिन्न प्रकार की आयुर्वैदिक औषधियों के निर्माण में प्रयुक्त होता है. इसका तेल तिक्त, मधुर, शीत, अतिसार नाशक, पित्तसंशमन, जल को सुगंधित करने वाला, रक्त विकार, मूत्रकृच्छ, कृष्ठ व व्रणरोधक होता है. इसके अतिरिक्त इसका उपयोग शर्बत, इत्र, साबुन व सौंदर्य प्रसाधनों में भी होता है. इसकी जड़ों में उड़नशील तेल, रक्त एवं धूसर रालदार पदार्थ आदि पाये जाते है.

सदाबहार :- इसका वानस्पतिक नाम 'कैथरैन्थस रोजियस' है. यह सीधा शाखीय एकवर्षीय पादप है. यह संपूर्ण भारतवर्ष में प्राकृतिक रुप से पाया जाता है. भारत के अतिरिक्त यह फिलीपाइन, ऑस्ट्रेलिया, दक्षिणी वियतनाम, श्रीलंका, इजरायल आदि देशों में पाया जाता है. यह उष्णकटिबंधीय भागों में अच्छी तरह पनपता है.

इस पौधे का उपयोग उच्च रक्तचाप, कैन्सर जैसे असाध्य

रोगों के लिए उपयोग में आने वाली औषधियों के निर्माण में होता है. यह मूत्रवर्धक, दस्तरोधी, घावों को भरनेवाला व रक्तस्त्राव को रोकने में भी सहायक है. इसका उपयोग मधुमेह उपचार में भी किया जाता है. इस पादप में 65 प्रकार के एल्केलोइड पाये जाते है इनमें इन्डील, रोबोसिन व सर्पेटाइन प्रमुख है. इसकी पत्तियों में विक्रीस्टिन व विनब्लासिटन तथा जड़ों में अल्मालीसीन व रिस्पारीन नामक एल्केलोइड पाये जाते है.

शंखपुखा :- इसे वानस्पतिक भाषा में टेफ्रोशिया, परपुरिया तथा राजस्थानी में वीपनी कहते है. यह 1-3 फीट ऊंचा बहुवर्षीय पादप है, जो 2000 मीटर तक की ऊंचाई वाले क्षेत्रों के सभी प्रांतो में प्राकृतिक रुप से पाया जाता है, एवं मैदानी भागों में भी मिलता है.

इसका संपूर्ण पादप अर्थात जड़, तना, पत्ती, फली एवं बीज औषधीय महत्व का होता है. इसका उपयोग बदहजमी, अतिसार, गठिया, अस्थमा, अल्सर, कुष्ठ रोग तथा पित्त, हृदय, श्वासनली, किडनी, लीवर प्लीहा, रक्त, पेशाब संबंधी रोगों के निवारण में होता है. इसकी जड़ों में टेफ्रोसीन,

डेगुलिन, क्वींसीटीन व स्यूटिन रसायन पाये जाते है.

इस प्रकार अनेक औषधीय पौधे इस क्षेत्र में पाये जाते है जिनकी खेती कर न केवल अकाल एवं अन्य विपरीत परिस्थितियों में आर्थिक उन्नति प्राप्त हो सकती है वरन इन औषधियों की खेती से क्षेत्र में हरियाली लाने तथा जैव विविधता का संरक्षण करने में भी मदद मिलती है.

- डॉ.नवीन कुमार बोहरा -

प्लॉट नं.389, गली नं.10, मिल्कमैन कोलोनी, पाल रोड, जोधपुर, राजस्थान

4. रतनजोत का अंधाधुन्ध रोपण

मात्र आर्थिक लाभ हेतु कठोर स्वभाव के विदेशी मूल के पौधे रतनजोत का देश में वृहद पैमाने पर रोपण भविष्य में गंभीर पारिस्थितिक समस्यायें खड़ी कर सकता है. देश में पहले से ही बहुत से विदेशी मूल के पौधे पारिस्थितिकी एवं

पर्यावरण के लिए चुनौती बने हुए हैं, ऐसे में रतनजोत का अंधाधुन्ध रोपण कोढ़ में खाज वाली स्थिति पैदा कर सकता है. जैव-विविधता क्षरण, ऊपजाउ भूमि का बेकार भूमि में परिवर्तन, भूमिगत जल का शोषण आदि कुछ ऐसी समस्यायें हैं, जो भारत में विदेशी मूल के पौधों द्वारा पैदा की गयी हैं. अपने हानिकारक स्वभाव के कारण विदेशी मूल के पौधों को 'जैविक दूषक' की संज्ञा दी गयी है.

ज्ञात हो कि वर्तमान में केंद्र एवं राज्य सरकारें किसानों एवं गैर सरकारी संगठनों को निजी एवं सरकारी भूमि (जिसमें बंजर भूमि भी शामिल है) में रतनजोत की खेती के लिए प्रेरित एवं प्रोत्साहित कर रही हैं, परिणामस्वरूप इस विदेशी मूल के पौधे का वृहद पैमाने पर रोपण किया जा रहा है. अपने कठोर स्वभाव, तीव्र वृद्धि दर एवं कम मृत्यु दर के कारण रतनजोत देश में वन विभाग का भी चहेता पौधा बन चुका है. देश के विभिन्न राज्यों में वन विभाग द्वारा भी इस पौधे का अंधाधुन्ध रोपण किया जा रहा है. वैसे भारत में रतनजोत की छिटपुट खेती उसके औषधीय गुणों के कारण सत्तर के दशक के प्रारंभिक वर्षों में दक्षिण भारत के कोरोमण्डल तट पर शुरू हुई थी.

रतनजोत का वैज्ञानिक नाम जेट्रोफा करकस है जो कि उष्णकटिबंधीय सदाबहार मुलायम काष्ठ वाला झाड़ीनुमा पौधा है. स्वस्थ पौधें की ऊंचाई करीब 3 से 4 मीटर होती है. इसकी पत्तियां हृदयाकार होती हैं. यह पुष्पीय पौधो के यूफोब्रियेसी कुल का सदस्य है. यह पौधा मूल रूप से मैक्सिको एवं दक्षिण अमेरिका से उत्पादित है.

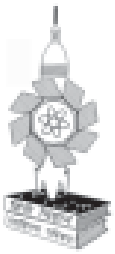

रतनजोत मुख्यतः अपने अखाद्य बीज तेल (40%) के लिए जाना जाता है, जिसमें औषधीय गुण पाये जाते हैं. जिससे त्वचा की बिमारियां, गठिया एवं लकवा का उपचार होता है. इसका तेल जलाने के काम के साथ-साथ साबुन एवं मोमबत्ती के निर्माण में भी काम आता है. इसके अतिरिक्त बीज के तेल को संस्करण के पश्चात डीजल के विकल्प के रूप में इस्तेमाल किया जा रहा है. अतः पौधे को भविष्य में बायो-डीजल के स्त्रोत के रूप में देखा जा रहा है. इसलिए रतनजोत को 'बायो-डीजल पौधा' नाम से भी जाना जाता है. रतनजोत की खली का इस्तेमाल प्राकृतिक खाद के अलावा जैवगैस संयंत्र में भी होता है.

रतनजोत पौधे का ताजा दूग्ध रक्त स्राव रोकने में सहायक होता है. दूग्ध का इस्तेमाल आमतौर से रक्त स्रावित घाव के उपचार में होता है. इसके अतिरिक्त दूग्ध का स्थानीय इस्तेमाल बवासीर, दाद, खाज, खुजली आदि बीमारियों के उपचार में भी होता है. पत्तियों का काढ़ा बुखार कम करने में सहायक होता है. भूने बीज का इस्तेमाल जुलाब के रूप में कब्ज आदि बीमारियों के उपचार में सहायक होता है.

रतनजोत अत्यन्त तीव्र वृद्धि दर वाला पौधा है जो किसी भी प्रकार की मिट्टी में सफलतापूर्वक उगने की क्षमता रखता है. इसकी विकास दर बहुत तीव्र होती है. रतनजोत में प्रचूर जनन क्षमता होती है. यह पौधा कायिक जनन द्वारा भी अपने को विस्तारित करने की क्षमता रखता है. भारत में इसका कोई सांस्कृतिक शत्रु नहीं है और शाकभक्षी जानवर भी इस पौधे का तिरस्कार करते हैं. रतनजोत जिस स्थान पर उगता है या उगाया जाता है, वहां अपना एकाधिकार स्थापित कर लेता है, जिससे पास पड़ोस में पौधे की अन्य जातियां नहीं पनप पाती है. उपर्युक्त गुण इस पौधे को आक्रामकता प्रदान करते है, जिसके फलस्वरूप भविष्य में यह पौधा देश में खतरनाक खर-पतवार का रूप धारण कर स्थलीय पारिस्थितिकतंत्र को भारी क्षति पहुंचा सकता है.

देश में जानबूझकर या अनजाने में लाये गये बहुत से विदेशी मूल के पौधे आज पारिस्थितिकी के लिए हानिकारक साबित हो रहे हैं. ऑस्ट्रेलियाई मूल का वृक्ष यूकिलिप्टस (जिसे कभी 'हरा सोना' की संज्ञा दी गयी थी) को आज उसके दुष्प्रभावों के कारण 'पारिस्थितिक आतंकवादी' घोषित कर दिया गया है. 1870 में अंग्रेजों ने दलदल सुखाने के लिए इसका प्रयोग शुरू किया था. सफेदा के नाम से लोकप्रिय इस विदेशी मूल के वृक्ष को आर्थिक लाभ के लिए सामाजिक वानिकी कार्यक्रम के अंतर्गत बड़े पैमाने पर रोपण किया गया. लेकिन इसके पारिस्थितिकी पर पड़ने वाले विपरीत प्रभावों के चलते आज इसके रोपण पर पूरी तरह से रोक लगा दी गयी है. सफेदा देश में जैव-विविधता क्षय एवं भूजल स्तर के गिरावट का एक मुख्य कारण रहा है.

अन्य संभावित आक्रामक पादप प्रजातियां :- सुबबूल, यह तेज वृद्धि वाला फैबेसी कुल का सदाबहार वृक्ष सुबबूल ल्यूसिना ल्यूकोसिफेला आज देश में जैव-विविधता के लिए खतरा बना हुआ है. यह जहां उगाया जाता है, उस आवास में अपना एकाधिकार स्थापित कर लेता है. इस वृक्ष के स्वयं उगने वाले बड़ी संख्या में बीजक पौधे अपने आस-पास स्थानीय जातियों के पौधों को नहीं पनपने देते हैं. यह मध्य अमेरिकी मूल का वृक्ष है, जिसका भारत में रोपण आमतौर से लकड़ी एवं चारे की प्राप्ति हेतु किया जाता है. पौधे का उपयोग हरी खाद के रूप में भी होता है. इस विदेशी वृक्ष की जाति देश के 21 राज्यों और 2 केंद्र शासित देशों में फैल चुकी है.

मध्य अमेरिकी मूल का ही एक अन्य छोटा झाड़ीनुमा कांटेदार वृक्ष काबूली कीकर शोसोपिस जूलीफ्लोरा भारत के शुष्क एवं अर्धशुष्क क्षेत्रों जैसे गुजरात, राजस्थान, हरियाणा सहित अन्य राज्यों और दो केंद्र शासित देशों में अपनी जड़े जमा करके देसी पौधों की प्रजातियों को विस्थापित कर जैव-विविधता को हानि पहुंचा रहा है. विशेषकर गुजरात में काबुली कीकर ने खर-पतवार का रूप धारण कर लिया है. कच्छ का वानी क्षेत्र जो दुनिया के विशालतम घास के मैदानों में से एक रहा है आज इस विदेशी मूल के पौधे द्वारा पूर्णतः नष्ट कर दिया गया है. काबुली कीकर गुजरात राज्य में भारतीय जंगली गधों की जनसंख्या में गिरावट का एक मुख्य कारण रहा है. इसकी गहरी जड़े इन क्षेत्रों में भू-जलस्तर को कम कर रही हैं.

सन् 1800 की शुरूआत में ऑस्ट्रेलिया से आया बबूल अकेसिया नाइलोटिका आज देश के कई राज्यों की 20 हजार हेक्टेयर से ज्यादा जमीन पर काबिज हो चुका है. अपने तीव्र वृद्धि दर के चलते यह तेजी के साथ अपनी कालोनी तैयार करता है. उच्च प्रतिस्पर्धी क्षमता के चलते देशी जातियां इसके आगे दम तोड़ देती हैं.

मध्य एवं दक्षिणी अमेरिकी मूल के दो अन्य पौधे जलकुम्भी आइकार्निया प्रैसपिज एवं कुर्री लैन्टाना कमरा जिन्हें उन्नीसवीं शताब्दी में अंग्रेज शासन के दौरान सजावटी पौधे के रूप में भारत में लाया गया था आज खर-पतवार के रूप में देश के लिए समस्या बने हुए है. जलकुम्भी (जिसे 'बंगाल का आतंक' और 'नीला शैतान' के नाम से भी जाना

जाता है) ने मीठे जल के स्रोतों जैसे, नदियों, झीलों, तालाबों, नहरों आदि में अपने आपको स्थापित कर रखा है. इससे नौकायन, मछली पकड़ने एवं सिंचाई आदि कार्यों में बाधा उत्पन्न होती है. यह पौधा जलीय जैव-विविधता ह्रास के लिए भी उत्तरदायी है. जलकुम्भी जलमग्न धान के खेत में विस्तारित होकर धान की खेती में बाधा और पैदावार को भी प्रभावित करता है. असम, बंगाल, बिहार एवं आन्ध्र प्रदेश में यह विदेशी मूल का पौधा जलीय पारिस्थितिकतंत्र के लिए खतरा बना हुआ है.

कुर्री उत्तराखण्ड एवं हिमाचल प्रदेश राज्यों में वन पारिस्थितिकतंत्र के लिए जबरदस्त खतरा बना हुआ है. यह झाड़ीनुमा पौधा वनों में अपने अत्यधिक विस्तार के कारण देसी जातियों के पौधों के प्राकृतिक पुर्नजनन को रोकता है जिससे जैव-विविधता का लगातार ह्रास हो रहा है. कुर्री विन्ध्य क्षेत्र के उष्णकटिबंधटीय शुष्क पूर्णपाती वनों के लिए खतरा बनता जा रहा है.

मध्य अमेरिकी मूल के शाकीय पौधे यूपेटोरियम की दो जातियां यूपेटोरियम एडिनोफोरम एवं यूपेटोरियम राइपेरियम मेघालय की पहाड़ियों पर जैव-विविधता के लिए लगातार खतरा बनी हुई हैं. यूपेटोरियम की इन दोनों जातियों के अत्यधिक विस्तार के कारण देसी पौधों की बहुत सी जातियां या तो विलुप्त हो चुकी हैं या विलुप्ति के कगार पर पहुंच चुकी हैं.

मध्य अमेरिकी मूल का ही शाकीय पौधा गाजर घास पार्थिनियम हिस्टोफोरस देश के मैदानी क्षेत्रों में जैव-विविधता के विलुप्ति का एक मुख्य कारण बना हुआ है. इस पौधे को 'मैदानी क्षेत्रों का आतंक' की संज्ञा दी जा सकती है. यह कठोर पौधा आवास में एकाधिकार स्थापित कर देसी जाति के पौधों को विस्थापित कर देता है. मैदानी क्षेत्रों में इस पौधे ने जातीय मिश्रण को ही बदल कर रख दिया है. धीरे-धीरे यह विदेशी मूल का घातक पौधा उत्तर भारत के मैदानी क्षेत्रों की उपजाऊ कृषि भूमि में विस्तारित होकर उसे बेकार भूमि में परिवर्तित कर रहा है. यह पौधा मनुष्य एवं पालतू पशुओं के स्वास्थ्य के लिए भी हानिकारक साबित हो रहा है. भारत के मैदानी क्षेत्रों में इसको पूरी तरह से नष्ट करना एक चुनौती बना हुआ है.

उपर्युक्त सभी पारिस्थितिक समस्या पैदा करने वाले विदेशी मूल के पौधे सफेदा एवं बबूल को छोड़कर मध्य अमेरिका एवं दक्षिण अमेरिका के मूल निवासी हैं, जो रतनजोत की भी जन्मस्थली है.

प्रत्यक्ष अनुभवों के आधार पर रतनजोत का अन्धाधुन्ध रोपण आत्मघाती कदम है, क्योंकि भविष्य में तीव्र वृद्धि दर का एक पौधा घातक खर-पतवार का रूप धारण कर जैव-विविधता को भारी क्षति पहुंचा सकता है.

देसी मूल का तीव्र वृद्धि वाला वृक्ष करंज पानगैमिया पिन्नाटा भारत में रतजोत का अच्छा विकल्प साबित हो सकता है क्योंकि करंज एवं रतनजोत के बीज के तेल के रासायनिक संगठन में काफी समानता होती है. करंज का तेल भी पारम्परिक रूप से त्वचा बीमारियों एवं गठिया में इस्तेमाल होता रहा है. इस तेल में कृमिनाशक, कीटनाशी एवं जीवाणुनाशी गुण पाये जाते हैं. करंज के बीज की खली भी रतनजोत की खली के समान खाद के रूप में इस्तेमाल होती है. करंज को भी रतनजोत की तरह बेकार एवं बंजर भूमि पर आसानी से उगाया जा सकता है. करंज क्षरित भूमि के पुनरूत्थान में सहायक होता है. यह फैबेसी लेगुमिनेसी कुल का वृक्ष लवणीय एवं क्षारीय भूमि के पुनरूत्थान में अत्यंत ही कारगर है. करंज की पत्तियों में लगभग 4 से 5 प्रतिशत नाइट्रोजन की मात्रा होती है जिससे इसकी पत्तियों को हरी खाद के रूप में इस्तेमाल किया जाता है. इसकी पत्तियां पालतू पशुओं के लिए हरे चारे के रूप में इस्तेमाल की जाती है. लकड़ी को ईंधन के रूप में भी काम में लाया जाता है.

पूर्व एवं वर्तमान में विदेशी मूल के पौधों के पारिस्थितिकी पर हानिकारक भावों को देखते हुए यह समय की आवश्यकता है कि हम भारत जैसे विराट जैव - विविधता वाले देश में विदेशी पौधों का विकल्प देसी पौधों में ही खोजे, ताकि विदेशी पौधों के पारिस्थितिकी एवं पर्यावरण पर पड़नेवाले विपरीत प्रभावों से बचा जा सकें.

- डॉ. अरविंद सिंह -
ओल्ड डी/3, जोधपुर कालोनी,
काशी हिंदू विश्वविद्यालय,
वाराणसी-221005, उ.प्र.
ई-मेल - arvindsingh_bhu@yahoo.com

5. आधुनिक स्वास्थ्य-सेवा और पारंपरिक चिकित्सा-पद्धतियां

आधुनिक मानव के जीवन की गति बहुत तेज है तथा वर्तमान समय में वह अधिक से अधिक सुविधाभोगी जीवन-पद्धति की ओर अग्रसर हो रहा है. इस सुविधाभोगी जीवनचर्या एवं भौतिकतावादी आचार-विचार के परिणामस्वरुप आज मानव समाज में तरह-तरह के रोगों का प्रकोप बढ़

रहा है. द्रुत गति से नई-नई बीमारियों की उत्पत्ति हो रही है, एवं पुरानी बीमारियों का स्वरुप बदल रहा है. ऐसे में स्वास्थ्य विशेषज्ञों के सामने उपस्थित संकट भी गंभीर होता जा रहा है. भारत जैसे देश में स्थिति और भी गंभीर है क्योंकि देश में उपलब्ध चिकित्सा सुविधाएं, अथवा स्वास्थ्य सेवाओं का वर्तमान ढांचा और प्रशिक्षित स्वास्थ्यकर्मियों की संख्या हमारी जनसंख्या की जरुरतों की अपेक्षा बहुत ही कम है. यही कारण है कि जनसंख्या के हर वर्ग के लिए समुचित स्वास्थ्य सेवा की व्यवस्था करना सरकार के लिए एक चुनौतीपूर्ण कार्य होता जा रहा है.

लेकिन ऐसे संकटपूर्ण समय में भी स्थिति कुछ ऐसी है कि भारतीय परिवेश में प्राकृतिक रुप से विकसित देशी उपचार-पद्धतियां हाशिये पर खड़ी नजर आ रही हैं, जबकि अधिकांश मामलों में ये पद्धतियां रोगों का कारण समझ कर उन्हें मिटाने में सक्षम हो सकती हैं. ऐसे में, मानव समाज के सामने उपस्थित स्वास्थ्य संबंधी चुनौतियों का सामना करने के लिए यह जरुरी है कि बीमारी के संबंध में हम अपने दृष्टिकोण में परिवर्तन लाएं. वर्तमान संदर्भ में याद रखना होगा, कि मात्र बीमारियों का उपचार ही महत्व नहीं रखता बल्कि जीवन एवं स्वास्थ्य के प्रति स्वस्थ दृष्टिकोण का विकास भी एक महत्वपूर्ण विषय है. विविध औषधियों एवं विभिन्न रोग-निवारक विधियों के रुप में हमारे पास एक समृद्ध परंपरा उपलब्ध है. इस परंपरा को अधिक और समृद्ध करते हुए हमें वर्तमान स्वास्थ्य सेवा में भारत की पारंपरिक चिकित्सा पद्धतियों का समावेश करते हुए स्वास्थ्य सेवा को सुदृढ़ बनाने के प्रयास करने होंगे.

चिकित्सा की प्रचलित पद्धतियां : रोग-निवारण एवं स्वास्थ्य-लाभ की दृष्टि से पूरे विश्व में आज अनेकानेक उपचार-पद्धतियां एवं चिकित्सा की विविध परंपराएं मानव समाज के बीच प्रचलित हैं. इनमें से दो सौ पचास से भी अधिक उपचार-पद्धतियां मान्यता प्राप्त हैं. स्वास्थ्य-सेवा के क्षेत्र में आज एक्यूपंचर, एक्युप्रेशर, गंध चिकित्सा, सम्मोहन चिकित्सा, रेकी चिकित्सा, प्राणिक चिकित्सा, मंत्र चिकित्सा, विश्राम चिकित्सा, हर्बल उपचार, यंत्र चिकित्सा, यज्ञ चिकित्सा, संगीत चिकित्सा आदि अनेक उपयोगी विधियों एवं पद्धतियों को सम्मिलित कर लिया गया है. लेकिन इन सबमें से चिकित्सा की एलोपैथी पद्धति को सबसे अधिक सामाजिक मान्यता मिली हुई है, जिसमें स्वास्थ्य से संबंधित विभिन्न समस्याओं के निदान के लिए कुछ न कुछ चिकित्सकीय उपाय की व्यवस्था है. हालांकि एलोपैथी पद्धति सबसे अधिक वैज्ञानिक चिकित्सा पद्धति मानी जाती है, लेकिन कुछ रोगों के उपचार में प्रभावोत्पादकता की दृष्टि से भी इस पद्धति की अपनी सीमाएं हैं.

चिकित्सा की भारतीय परंपरा के अंतर्गत विभिन्न रोग-निवारक विधियों एवं प्राकृतिक रूप से तैयार विविध औषधियों का उपयोग भारत में अत्यंत प्राचीन काल से किया जा रहा है. इस भारतीय परंपरा को और अधिक समृद्ध करते हुए आज इसमें मूल भारतीय पद्धतियों के साथ-साथ विदेशों में विकसित कुछ अन्य चिकित्सा पद्धतियों को भी अंगीकार कर लिया गया है. इसके अंतर्गत 'आयुष' के नाम से जन-

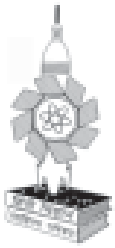

सामान्य में प्रचलित विभिन्न भारतीय चिकित्सा पद्धतियों एवं विधियों, जैसे आयुर्वेद, योग, यूनानी उपचार, प्राकृतिक चिकित्सा, सिद्ध तथा होमियोपैथी पद्धतियों को मान्यता प्राप्त है.

भारतीय चिकित्सा पद्धतियों के संबंध में उल्लेखनीय बात यह है कि इसमें ध्यान, साधना, प्राणायाम, उपासना, अध्यात्म आदि को भी सम्मिलित किया गया है, जो व्यक्ति के संपूर्ण स्वास्थ्य में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं. भारतीय मनीषियों ने शरीर को स्वस्थ रखने, कुंठा एवं तनाव को दूर करने, मानसिक संतुलन प्राप्त करने तथा उच्चतम स्तर का बौद्धिक और आध्यात्मिक ज्ञान अर्जित करने के लिए उपर्युक्त विधियों को अत्यंत लाभदायक माना है.

पारंपरिक भारतीय चिकित्सा-पद्धतियों का उपयोग क्यों? आज मानव जाति के सम्मुख कई तरह के रोगों का इलाज ढूंढने की चुनौती है. वर्तमान में जैसे-जैसे रोग बढ़ते जा रहे हैं, वैसे-वैसे उपचार की देसी पद्धतियों का महत्व भी बढ़ता जा रहा है. लेकिन मानव स्वास्थ्य का क्षेत्र एक ऐसा क्षेत्र है, जहां मानव के समक्ष आज कई प्रकार की चुनौतियां खड़ी है. इन चुनौतियों का स्वरुप भी निरंतर जटिल होता जा रहा है. कई बार ऐसा भी होता है कि जिन बीमारियों पर नियंत्रण कर लिया जाता है, वे अचानक दुबारा सिर उठा लेती हैं. ऐसे में नई असाध्य बीमारियों के इलाज की खोज में शोधरत वैज्ञानिक व चिकित्साविद् उन्हीं पुराने रोगों को दबाने के अभियान में दुबारा लग जाते हैं. रोगों के नियंत्रण के लिए आज इस बात की जरुरत है कि चिकित्सा व उपचार के क्षेत्र में उपलब्ध हर स्थानीय चिकित्सकीय पद्धति को आजमाया जाए एवं विशेष तौर पर भारतीय चिकित्सा पद्धतियों एवं प्राचीन उपचारक परंपराओं की उपयोगिता की जांच की जाए.

यह एक प्रमाणित तथ्य है कि अधिकतर रोगों के निवारण में एलोपेथी दवाइयां महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं तथा रोगों को दूर भगाने में तेजी से असर दिखाती हैं. लेकिन हम सभी जानते हैं कि वास्तविकता में एलोपेथी दवाइयां हमारे शरीर पर प्रतिकूल प्रभाव भी छोड़ती हैं, और रोग को समाप्त करने की बजाय इसे अस्थायी तौर पर दबा देती है.

आज के परिवर्तनशील युग में भारत की पारंपरिक चिकित्सा-पद्धतियों का उपयोग लगातार बढ़ रहा है क्योंकि आयुर्वेद आदि सभी आरोग्यवर्द्धक देसी पद्धतियां आज कुछ ऐसी बीमारियों की रोकथाम में मदद कर रही हैं, जो एलोपैथी पद्धति में प्रचलित अन्य औषधियों के विरुद्ध प्रतिरोधक क्षमता का विकास कर चुकी है. हमारे लिए यह ध्यान में रखना जरुरी है कि वर्तमान युग में शारीरिक व्याधियां, मानसिक तनाव, अवसाद तथा कुंठा-जनित रोग जिस तेजी से बढ़ रहे हैं, उनके निदान के लिए हजारों वर्षों से आजमाई गई चिकित्सा-पद्धति उपयुक्त और कारगर सिद्ध हो रही है. वास्तव में आज के अस्त-व्यस्त वातावरण में हमारी दिनचर्या और जीवन-शैली अत्यंत अनियमित हो गई है. यही कारण है कि आधुनिक मानव के जीवन में जिन बीमारियों का प्रकोप सबसे अधिक बढ़ रहा है वे सभी जीवन-शैली जनित बीमारियां हैं. इनके निवारण के लिए किसी उपचार की बजाय संतुलित जीवन-पद्धति अपनाना अधिक कारगर सिद्ध हो सकता है। यह एक सर्वज्ञात तथ्य है कि आयुर्वेद वास्तव में कोई चिकित्सकीय पद्धति न होकर एक परिपूर्ण जीवन-पद्धति है.

मानव स्वास्थ्य की दृष्टि से लाभदायक जिस समग्र जीवन-शैली को पारंपरिक भारतीय चिकित्सा-पद्धतियों के अंतर्गत प्रोत्साहित किया गया है, उसे इन पद्धतियों की सबसे बड़ी विशेषता माना जा सकता है. वास्तविकता में यह अपने-आप में एक संपूर्ण दर्शन है. यह हमें बताता है कि रोगों से अस्थायी मुक्ति पा लेना समस्या का निदान नहीं हो सकता, बल्कि रोगों की उत्पत्ति के कारणों पर ध्यान देना अधिक आवश्यक है. उपचार की देसी पद्धतियों में बीमारी होने के कारणों पर गहराई से विचार किया गया है, तथा वातावरण की स्वच्छता एवं आहार-विहार की शुद्धता पर बल दिया गया है. वास्तव में प्रकृति का साहचर्य तथा प्राकृतिक नियमों का पालन करने की आदत, दो ऐसी बातें हैं जो मानव को निरोग बनाने के साथ-साथ उसके वातावरण को भी स्वास्थ्यवर्द्धक बनाए रखती हैं. इससे मानव शरीर में बीमारियों से लड़ने की क्षमता का विकास तो होता ही है, साथ ही बीमारियों के उत्पन्न होने की आशंका भी बहुत कम हो जाती है.

स्वास्थ्य-सेवा में भारत की पारंपरिक चिकित्सा-पद्धतियों का समावेश : प्रकृति एवं प्राकृतिक उपादानों की उपयोगिता के प्रति भारतीय आस्था ने चिकित्सा की देसी एवं पारंपरिक व्यवस्था को सुदृढ़ बनाया है. यद्यपि इस व्यवस्था को पूर्णरुपेण वैज्ञानिक मानने वालों की संख्या लगातार बढ़ रही है, तथापि सत्यान्वेषण के इस युग में भारतीय चिकित्सा-पद्धतियों को यथोचित स्थान दिलाने के लिए निरंतर शोधपरक अध्ययन एवं तर्कसंगत विश्लेषण जरुरी है. रोग प्रबंधन, निवारक एवं सुरक्षात्मक स्वास्थ्य सेवा, उत्तम स्वास्थ्य हेतु कारगर उपायों का कार्यान्वयन, स्वच्छता एवं आरोग्यवर्द्धक आदतों को बढ़ावा देना तथा जीवन के प्रति स्वस्थ दृष्टिकोण का विकास करना आदि की सरकारी एवं सामाजिक दृष्टि हो सकती है. अधिकांश भारतीय आरोग्यवर्द्धक पद्धतियों का वैज्ञानिक

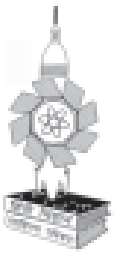

आधार है जो अब प्रमाणित किया जा चुका है. स्वास्थ्य एवं चिकित्सा से संबंधित आधुनिकतम प्रयोगशालाओं में भारतीय उपचारक क्रियाओं और आरोग्यवर्द्धक उपायों पर संपन्न किए गए अधिकांश वैज्ञानिक परीक्षणों के परिणाम अत्यंत उत्साहवर्द्धक रहे हैं.

आधुनिक विज्ञान जहां क्लोनिंग के द्वारा विभिन्न जीवों की सृष्टि के मार्ग तलाश चुका है, वहीं दूसरी ओर त्वचा के नीचे एक चिप का रोपण करके जीवन-रक्षक दवाओं की नियमित एवं समयबद्ध आपूर्ति भी सुनिश्चित कर रहा है. इस प्रकार, स्वास्थ्य सहित मानव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी ने अविश्वसनीय रूप से समुन्नत बना दिया है. लेकिन यह भी एक सच्चाई है कि मानव समाज अपनी मान्यताओं एवं परंपराओं को जीवित रख कर ही विज्ञान की रचना एवं विकसित प्रौद्योगिकी का उपयोग करता है. यही कारण है कि आधुनिक ज्ञान-विज्ञान द्वारा उपलब्ध कराए गए अनेक विकल्पों एवं उपचारक विधियों की उपलब्धता के बावजूद भारतीय चिकित्सा पद्धति में आम लोगों की आस्था बढ़ती जा रही है. इस बात को ध्यान में रखते हुए यह सुनिश्चित करना जरुरी है कि आधुनिक विज्ञान की सहायता से पारंपरिक देसी उपचार-पद्धति को और अधिक व्यवस्थित एवं लोकगम्य रुप दिया जाए, तथा इसकी सहायता से सबके लिए स्वास्थ्य-सेवा को सुलभ बनाने के प्रयास किये जाये.

विज्ञान के प्रत्येक क्षेत्र में होनेवाले शोध-कार्य के परिणामस्वरुप आज मानव स्वास्थ्य के क्षेत्र में अनपेक्षित सुधार आया है. लेकिन अप्राकृतिक होती जा रही मानव की जीवन शैली तथा स्वास्थ्य संबंधी विभिन्न समस्याओं की बढ़ती जटिलता को देखते हुए यह जरुरी हो जाता है कि देसी चिकित्सा-पद्धतियों को अधिक कारगर बनाने के लिए आधुनिक ज्ञान-विज्ञान के साथ इनका तालमेल स्थापित किया जाए. टिशू कल्चर, सेल कल्चर, जीनोमिक्स, नैनो टेक्नोलॉजी आदि अधुनातन तकनीक तथा अत्याधुनिक यंत्रों एवं उपकरणों का उपयोग करते हुए उपचार की प्राचीन भारतीय पद्धतियों को और अधिक वैज्ञानिक एवं प्रामाणिक स्वरूप प्रदान किया जा सकता है. टेली-मेडिसिन के इस युग में ज्ञान-विज्ञान की इन दोनों पद्धतियों के समन्वय से आधुनिक समय की लाइलाज मानी जाने वाली कई बीमारियों के इलाज की दिशा में भी प्रगति करना संभव हो सकेगा. हमारे देश के कई संस्थानों में इस प्रकार के शोध-कार्य किए जा रहे हैं जिनकी सहायता से चिकित्सा विज्ञान की भारतीय सच्चाई उजागर हो रही है.

अध्ययनों के आधार पर आधुनिक स्वास्थ्य विज्ञान ने भी यह सिद्ध कर दिया है कि वर्तमान युग की कई बीमारियों के लिए भारतीय चिकित्सा-पद्धतियों के विकल्प को आजमाना लाभप्रद हो सकता है.

प्राचीन भारतीय चिकित्सा ग्रंथों का गहन अध्ययन करने वाले कई विदेशी विद्वान भी यह स्वीकार करते हैं कि भारतीय ऋषि-मुनियों ने हजारों वर्षों पूर्व जिस ज्ञान की खोज करके उपचार की एक विकसित पद्धति का विकास किया था, आधुनिक विज्ञान आज भी वहां तक पहुंचने का प्रयास कर रहा है. नैनो साइंस एवं नैनो प्रौद्योगिकी (Nano Technology) आज भले ही विज्ञान का अत्याधुनिक क्षेत्र समझा जाता हो, परंतु हमारे देश में इस ज्ञान का हजारों वर्ष पहले से प्रयोग किया जा रहा है. प्राचीन चिकित्सकों द्वारा तैयार आयुर्वेदिक भस्में नैनो प्रौद्योगिकी का बेहतरीन उदाहरण हैं। परीक्षणों में यह पाया गया है कि जिस तरीके से भस्मों का निर्माण किया जाता है, उसमें पदार्थ अति सूक्ष्म कणों (Nano Particles) में परिवर्तित हो जाते हैं और असाध्य रोगों के इलाज में भी कारगर सिद्ध होते हैं.

यह एक सच्चाई है कि आधुनिक स्वास्थ्य-सेवा के लाभों को यदि देश के प्रत्येक नागरिक तक पहुंचाना है तो यह कार्य पारंपारिक भारतीय चिकित्सा-पद्धतियों को बढ़ावा देकर कारगर ढंग से किया जा सकता है. विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा कराए गए अध्ययनों ने भी भारतीय उपचार-पद्धति सहित विभिन्न पारंपरिक चिकित्सा पद्धतियों की प्रभावोत्पादकता पर नया प्रकाश डाला है. इन अध्ययनों के आधार पर यह पाया गया है कि कई रोगों के उपचार में एलोपैथी पद्धति की तुलना में भारत एवं एशिया के अन्य देशों की पारंपरिक एवं स्वदेशी चिकित्सा पद्धतियां अधिक कारगर भूमिका निभा सकती है. जहां तक भारतीय चिकित्सा-पद्धतियों की बात है, इनके अंतर्गत इलाज के लिए हमेशा प्राकृतिक तत्वों का उपयोग किया जाता हैं, अर्थात एलोपेथिक चिकित्सा-पद्धति की तरह रासायनिक तत्वों से निर्मित दवाइयों का उपयोग नहीं होता. जड़ी-बूटियों में विद्यमान शोधक गुण शरीर के प्रतिरक्षण तंत्र को मजबूत बनाते हैं तथा विभिन्न अंगों पर स्वास्थ्यवर्द्धक प्रभाव डालते हैं.

समाज के बदलते मापदंडों के कारण उत्पन्न विभिन्न प्रकार के रोगों की संख्या में वृद्धि और स्वास्थ्य के क्षेत्र में बढ़ती समस्याओं के कारण पश्चिमी चिकित्सा पद्धति के अनेक जाने-माने चिकित्सक, स्वास्थ्य विशेषज्ञ तथा प्रतिष्ठित वैज्ञानिक आज भारत की पारंपरिक चिकित्सा-पद्धतियों के अधिकतम उपयोग की जोरदार वकालत कर रहे हैं. हमारे देश के प्रसिद्ध वैज्ञानिक तथा हैदराबाद स्थित कोशिकीय एवं आणविक जीवविज्ञान केंद्र (Center for Cellular and

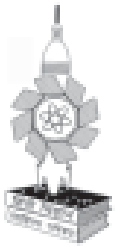

Molecular Biology) के निदेशक डॉ. लालजी सिंह का मानना है कि, 'कई नई तकनीकों के प्रादुर्भाव से जीवविज्ञान के शोध कार्य में तेजी आ गयी है. यकीनन इन सब की वजह से विविध रोगों के लिए नई दवाइयों की खोज में मदद मिलेगी. हमें इस संदर्भ में आयुर्वेदशास्त्र तथा अन्य जड़ी-बूटियों की आदिवासी परंपरा को भी आधुनिक वैज्ञानिक आधार देते हुए रोगों के निर्मूलन में साथ लेकर चलना होगा.' स्पष्ट है कि यदि आधुनिक एवं पुरातन ज्ञान का सदुपयोग सुनिश्चित किया जाए तो 5000 वर्षों से भी अधिक पुराने आयुर्वेदशास्त्र तथा अन्य उपचार-पद्धतियों को मानव-समाज के लिए अधिक हितकारी रुप दिया जा सकता है.

निष्कर्ष : आज के भौतिकतावादी युग में भारतीय चिकित्सा-पद्धतियों की लोकप्रियता लगातार बढ़ रही है.भारतीय समाज में आरंभ से ही देसी उपचार-पद्धतियों को सम्मानपूर्वक स्थान मिला हुआ है, क्योंकि शरीर को दोष-रहित बनाने तथा रोगों को दूर भगाने की दृष्टि से देसी उपचार को कारगर पाया गया है. इसके साथ-साथ यह भी एक सत्य है कि चिकित्सा की भारतीय पद्धतियों को वर्तमान में इलाज की सबसे सस्ती पद्धतियों में गिना जाता है जिसका लाभ गरीब से गरीब व्यक्ति भी उठा सका है. भारतीय चिकित्सा-पद्धतियों की यही विशेषताएं आधुनिक स्वास्थ्य-सेवा के संदर्भ में इसकी उपयुक्तता एवं महत्व को उजागर करती है. ऐसे में आज इस बात की आवश्यकता है कि देश में स्वास्थ्य संबंधी पश्चिमी माडल का अंधा अनुकरण करने के बजाय हम अपने देश की पारंपरिक चिकित्सा पद्धतियों को प्राथमिकता देकर स्वास्थ्य-सेवा को सबके लिए सुलभ बनायें.

-संजय चौधरी

हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद
कार्यकारिणी समिति
(वर्ष : 2012-14)

डॉ देवानंद शर्मा	अध्यक्ष
श्री दिनेश कुमार शुक्ल	उपाध्यक्ष
श्री जयप्रकाश त्रिपाठी	सचिव
श्री सत्यप्रभात प्रभाकर	सहसचिव
श्री दीनानाथ सिंह	कोषाध्यक्ष
डॉ सुभाष त्रिपाठी	सदस्य
श्री जगदीश शर्मा	सदस्य
श्री कवीन्द्र पाठक	सदस्य
श्री विपुल सेन	सदस्य
श्री अनिल कुमार अहिरवार	सदस्य
श्री किशन चंद	सदस्य
श्री मुकेश चंद गोयल	सहयोजित सदस्य
श्री प्रदीप कुमार रामटेके	सहयोजित सदस्य
श्री राजेश कुमार	सहयोजित सदस्य
डॉ जगदीश चंद्र व्यास	पदेन सदस्य (संपादक, वैज्ञानिक)

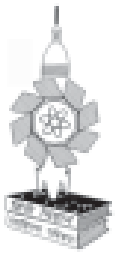

डा. होमी भाभा हिन्दी विज्ञान लेख प्रतियोगिता 2011 के परिणाम

हिन्दी विज्ञान साहित्य परिषद एवं राजभाषा कार्यान्वयन समिति (भा.प.अ.केन्द्र) के संयुक्त तत्वावधान में आयोजित अखिल भारतीय हिन्दी विज्ञान लेख प्रतियोगिता-2011 में निम्नलिखित प्रविष्टियों को निर्णायक मंडल ने पुरस्कृत किया है ।

प्रथम पुरस्कार : **रु.2000/-**	**डॉ यशवंत नाईक, पदार्थ विकास प्रभाग, भा प अ केन्द्र, मुंबई** **: 'पोजीट्रॉन विलोपन प्राविधि व उसके पदार्थ विज्ञान में अनुप्रयोग'**
द्वितीय पुरस्कार : **रु.1500/-**	**डा विनिता सिंघल, सह संपादक, साइंस रिपोर्टर, नई दिल्ली-110 012** **: 'रचना से रचयिता बनने की ओर'**
तृतीय पुरस्कार : **रु.1000/-**	**डा सविता गुप्ता, 2डी/78, विनीत खंड 2, गोमती नगर, लखनऊ-226010** **'राई अरगट - अभिशाप या औषधि'**
प्रोत्साहन पुरस्कार : **रु.500/-**	**अशोक कुमार सिंह, केन्द्रीय मृदा एवं जल संरक्षण अनुसंधान एवं प्रशिक्षण केन्द्र, आगरा** **भारत के अर्द्ध शुष्क क्षेत्रों में जल ग्रहण विकास कार्यक्रम के कारण सूखते पारपांरिक तालाब'**
प्रोत्साहन पुरस्कार : **रु.500/-**	**डॉ रमेश सोमवंशी, भारतीय पशु चिकित्सा अनुसंधान केन्द्र, इज्जत नगर, बरेली** **'मानव प्राण घातक विदेशज पशुजन्य रोग और जैव सुरक्षा द्वारा बचाव'**
प्रोत्साहन पुरस्कार : **रु.500/-**	**राघव शैलेन्द्र कुमार सिंह, भारतीय उष्णदेशीय मौसम विभाग संस्थान, पुणे** **'कीटनाशकों व पीडकनाशकों से मानव स्वास्थ्य एवं पर्यावरण पर दुष्प्रभाव'**
प्रोत्साहन पुरस्कार : **रु.500/-**	**डा विजय कुमार उपाध्याय, बोकारो, झारखंड** **'शैलों के आयु निर्धारण में अमोनियम थोरियम अनुपात की भूमिका'**
प्रोत्साहन पुरस्कार : **रु.500/-**	**प्रो सुरेश चन्द्र, निदेशक, भौतिकशास्त्र संकुल, कटरा, जम्मू कश्मीर** **'चन्दामामा क्यों छुप गए थे?'**
प्रोत्साहन पुरस्कार : **रु.500/- (अहिंदी)**	**अनिल बी वलसंगकर, राष्ट्रीय समुद्र विज्ञान संस्थान, गोवा** **'क्या रत्नागिरी के कालबादेवी खाडी स्थित तलछट मानसून प्रभावित हैं'**

इनके अलावा कुछ अन्य लेखों (जिनके लेखकों के नाम नीचे दिए जा रहे है) को वैज्ञानिक पत्रिका के लिए उपयुक्त पाये जाने पर संपादक मंडल द्वारा सामान्य लेखों में सम्मिलित किये जा सकने की संभावना है.

लेख का शीर्षक	**लेखक**
1. शिशु के लिए प्रकृति का अनुपम आहार है मां का दूध	अनिल कुमार,
2. व्याह ईट ईज सेमी सिंथेटिक	ओम प्रकाश खंडेलवाल / डा.ओ.पी.जोशी,
3. कास्मेटिक सर्जरी.....	सीताराम गुप्ता,
4. लैंस के रोग.....	डा.प्रेम चन्द स्वर्णकार

व्यवस्थापक मंडल,
'वैज्ञानिक'

भा.प.अ.कें.से विज्ञान समाचार

सुदूर हस्तन एवं रोबोटिकी

कॉपेक्ट लेप्रोस्कोपिक मैनिपुलेटर (CoLaM) नामक एक रोबोटिक यंत्र का विकास लैप्रोस्कोपिक सर्जरी के दौरान एंडोस्कोप (दर्शी उपकरण) को नियंत्रित करने के लिए किया गया है जिसे जॉयस्टिक और स्विचों के प्रयोग द्वारा पैरों से चलाया जा सकता है. इसके द्वारा शल्य चिकित्सक दोनों हाथों में शल्यक्रिया के औज़ार होने के बावजूद सीधे तौर पर शल्य क्रिया वाले स्थान को देखकर नियंत्रित व समायोजित कर सकता है. इस प्रकार का पहला प्रोटोटाइप यंत्र इस वर्ष 22 सितंबर को स्थानीय प्रयोगों के लिए क्रिस्टियन मेडिकल कॉलेज (CMC) वेल्लोर को सौपा गया.

इलेक्ट्रॉनिकी तथा यंत्रीकरण

नैशनल नॉलेज नेटवर्क (NKN) के माध्यम से फ्रांस के ग्रेनोबल स्थित सिंक्रोट्रान FIP बीमलाइन तक अभिगमन तथा उसके सुदूर नियंत्रण हेतु भापअ केंद्र में एक सुविधा स्थापित की गई है.

भापअ केंद्र में औद्योगिक सहभागी के साथ मिलकर एक स्कैनिंग इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी का विकास किया गया है. इसमें 30 KV पर 4 नैनोमीटर का विभेदन और अधिकतम 1,50,000 तक का आवर्धन किया जा सकता है.

PIN सूचना उपलब्ध करवाने हेतु RFID कार्ड रीडर का प्रयोग करते हुए कार्मिकों की पहचान के सत्यापन के लिए भापअ केंद्र में एक अभिनव एवं संहत हैंड स्कैन बायोमैट्रिक सिस्टम (HSBS) का विकास किया गया है. नेटवर्क मोड पर कार्यरत HSBS की चार इंकाइयों को उनके मूल्यांकन के लिए भापअ केंद्र में स्थापित किया गया है.

Co-60, Cs-137 आदि रेडियोसक्रिय समस्थानिकों के संसूचन हेतु एक संहत एवं पोर्टेबल प्रणाली (हैंडहेल्ड टेली रेडियो न्यूक्लाइड डिटेक्शन सिस्टम फॉर कवर्ट ऑपरेशन) का विकास किया गया है. निश्चित सीमा से अधिक सक्रियता संसूचित होने पर इस प्रणाली द्वारा मोबाइल फोन पर एलार्म भेजा जाता है. और रिमोट सर्वर पर भी देशान्तर रेखांश व अक्षांश की सूचना सहित एक अलार्म भेजा जाता है.

पदार्थ एवं धातुकी

नाभिकीय श्रेणी के बेरिलिया का उत्पादन करने के लिए एक पाइलट सूविधा की स्थापना की गई, जो CHTR (Compact High Temperature Reactor - सुघड उच्च तापीय रिएक्टर) एवं पुनर्सज्जित अप्सरा रिएक्टर के लिए मंदक-सह-परावर्तक है.

CHTR हेतु प्रयोग में आने वाले कणिक ईंधन के एकल अभियान में सभी परतों के लेपन को ऑनलाइन नियंत्रित करने के लिए कणों के TRISO (त्री समस्थानिक) लेपन पर अध्ययन किए गए हैं.

उच्चताप रिएक्टरों तथा द्रुत रिएक्टरों में न्यूट्रॉन अवचूषकों के अतिरिक्त हाईपरसोनिक रीएन्ट्री वेहिकल की तापीय संरक्षा जैसी उच्च तापमान संरचनाओं के लिए बोरॉन कार्बाइड एवं दुर्गलनीय/विरल मृदा धातु बोराइड संभावित पदार्थ होते हैं. तप्त दाबन की तुलना में काफी निम्न तापमान पर समृद्ध बोरॉन कार्बाइड, हैफनियम डाइबोराइड, जर्कोनियम डाइबोराइड एवं टाइटेनियम डाइबोराइडों के सन्निकट सैद्धांतिक सघन पिंडों को स्पार्क प्लाज्मा सुविधा का प्रयोग करते हुए समेकित किया गया.

लेसर प्लाज्मा एवं त्वरक प्रौद्योगिकी

द्रव यूरेनियम हेतु अभिनव सिरेमिक संरक्षणात्मक लेपनों के विकास की खोज में टैन्टेलम क्रूसिबल पर जमे हुए प्लाज्मा स्प्रैड यीट्रिया लेपनों का परीक्षण किया गया ताकि विशेष रूप से अभिकल्पित सुविधा में द्रवित यूरेनियम का आक्रमण होने पर प्रतिरोध किया जा सके. ये लेपन लगातार 120 घंटों के टैस्ट रन के दौरान तथा 400 घंटों से अधिक संचयी टैस्ट रन के दौरान स्थिर रहे, और रासायनिक आक्रमण सहन कर गए. 3 MeV DC त्वरक को नियमित रूप से 1.0 MeV बीम ऊर्जा एवं 4.6 mA बीम करन्ट पर प्रचालित किया गया. एक स्थानीय निर्माता से डोसीमीटर फिल्मों (B3) एवं 2.5 mm मोटे रबर के नमूनों को उक्त रेटिंग पर 2.2 मीटर प्रति मिनट की गति पर 80 पासों के लिए किर्णित किया गया और उनका विश्लेषण किया गया.

LEHIPA (कम ऊर्जा उच्च तीव्रता प्रोटान त्वरक) एक ड्रिफ्ट ट्यूब लाइनेक है, जिसमें स्थायी चुंबक, जल शीतित ड्रिफ्ट नलियों (DT's) को डीटी टंकी के अक्ष के साथ लगाया जाता है. भापअ केंद्र द्वारा दो प्रोटोटाइप ड्रिफ्ट ट्यूबों का डिजाइन एवं संविचरन किया गया. इन नलियों की चुंबकीय फ्लक्स मापन एवं शीतलन जांच (अनुकारित ऊष्मा भार सहित) सफलता पूर्वक की गई.

आइसोटोप अनुप्रयोग

177Lu-DOTATATE, नामक एक पेप्टाइड आधारित रेडियोभेषज सफलतापूर्वक तैयार किया गया है और इसे भारत के 5 अस्पतालों के सहयोग से रोगलाक्षणिक (क्लिनिकल) योजना में प्रयोग हेतु और तांत्रिक अंतःस्त्रावो (न्यूरोएन्डोक्रीन) ट्यूमरों से ग्रसित रोगियों के उपचार में इसके प्रयोग हेतु प्रदर्शित किया गया है. अब तक, 100 से अधिक रोगियों के लिए 177Lu-DOTATATE का प्रयोग करके हमारी विधि से और हमारे केंद्र में उत्पादित उच्च कोटि के Lu177 से खुराके तैयार की गई हैं.

राष्ट्रीय संस्थानों जैसे डीआरडीओ, इसरो, आइज़ीकार को उनके अनुसंधान हेतु "Fe," Co एवं Ni की आपूर्ति की गई है. इनमें से अनेक स्रोत आयात किए गए स्रोतों से काफी सस्ते हैं और कुछ तो खरीद के लिए उपलब्ध ही नहीं हैं.

हमारे विकिरण औषध केंद्र में कैंसर हेतु उपचारात्मक कर्मक वाले दो फ्लोरीन-18 (F-18), कैंसर में इमेजिंग सेल प्रोलिफिरेशन हेतु फ्लूरोथाइमिडाइन एवं ट्यूमर में हाइपॉक्सिक कारणों के इमेजिंग हेतु (18-F) फ्लूरोमिसोनिडाजोल ((F-18)FMISO) के लिए संश्लेषणाचार, विकिरण रसायन मूल्यांकन एवं व्यावसायिक उत्पादनों का विकास किया गया.

रसायन इंजीनियरी वर्ग

इलेक्ट्रॉनिक श्रेणी (प्रकार E-III /प्रकार E-IV)वाले अतिशुद्ध जल के उत्पादन हेतु एक इलेक्ट्रो-डि-आयनीकरण (EDI) यूनिट को निम्न तापमान बाष्पीकरण (LTE) समुद्र जल निलंबणीकरण संयंत्र के साथ समाकलित किया गया है जिसमें चालकता 0.1 माइक्रोसीमेन/cm और सिलिका तत्व 50 ppb से कम हैं.

एक ऐसे द्विचरणीय स्पन्द ट्यूब क्रायोकूलर का विकास किया गया जिसमें हीलियम प्रशीतक के रूप में कार्य करती है. इसमें 2.8 K (केलविन) के निम्नतम तापमान तक पहुंचाने की क्षमता है. क्रायोकूलर का उपयोग क्रायोजेनिक अनुप्रयोगों हेतु तापमान संवेदक के अशांकन के लिए किया जाएगा.

नाभिकीय यंत्रीकरण कार्यक्रम के अंतर्गत प्लव संस्तर तकनीक के माध्यम से एकल सिलिकॉन क्रिस्टल को खींचने/बनाने/निकालने के लिए प्रचालन प्राचल की स्थापन की गई. एकल क्रिस्टलों के मुख्य प्रचलों के अभिलक्षणन किए गए और उन्हें अंतर्राष्ट्रीय मानकों पर संतोषजनक पाया गया.

भौतिक विज्ञान वर्ग

कला विपर्यास प्रतिबिम्बन सुविधा (फेज कंट्रास्ट इमेजिंग फैसिलिटी) (जो भारी तत्वों के एक आव्यूह में हल्के तत्व प्रोफाइल का उद्घाटन करने में समर्थ है) और न्यूट्रॉन प्रेरित इलेक्ट्रॉन रेडियोग्राफी सुविधा (जो दस्तावेजों, पेंटिंग तथा जैविक नमूनों की जांच करने में लाभदायक है) का हाल ही में साइरस में कमीशन किया गया.

गामा-रे संसूचन में अनुप्रयोगों हेतु उच्च गुणवत्ता वाले थैलियम मादित सीजियम आयोडीन एकल क्रिस्टलों की वृद्धि की गई.

परमाणु खनिज अन्वेषण एवं अनुसंधान निदेशालय (AMDER) के भू-कालानुक्रमीय अनुप्रयोगों में उपयोग के लिए उच्च परिशुद्धता के साथ आइसोटोप अनुपात मापन हेतु एक नए सप्त संग्राहक तापीय आयनन द्रव्यमान स्पेक्ट्रममापी का अभिकल्पन तथा विकास किया गया.

(साभार : बी.ए.आर.सी.न्यूजलेटर)

मोटे लोगों के लिए ओजोन ज्यादा खतरनाक

इंसानों पर ओजोन के प्रभाव की पड़ताल के लिए किए गए एक अध्ययन के अनुसार मोटापे के शिकार लोगों

के लिए वातावरण में मौजूद ओजोन गैस से संपर्क ज्यादा खतरनाक साबित होता है. ओजोन के थोड़े समय तक संपर्क से कई लोगों में फेफड़ों की सक्रियता में कमी देखी गई है. अमेरिकी अनुसंधानकर्ताओं के एक दल ने 18 से 35 आयु वर्ग के स्वस्थ पुरुषों और महिलाओं के फेफड़ों की सक्रियता में कमी पर बाडी मास इंडैक्स (बीएमआई) के प्रभाव का

अध्ययन किया. अध्ययनकर्ता स्टेफेनी लंदन के अनुसार, हम यह जानने के इच्छुक थे कि क्या कारण है कि कुछ लोगों के फेफड़ों की सक्रियता में दूसरों के मुकाबले ज्यादा गिरावट आ जाती है. हमारे पास एक अध्ययन मौजूद था जिसके तहत मोटापे के शिकार चूहों में ओजोन का फेफड़ों पर प्रभाव अधिक पाया गया था. अनुसंधानकर्ताओं ने इसी आधार पर मनुष्यों पर भी अध्ययन किया और पाया कि बीएमआई के बढ़ते स्तर के साथ ही ओजोन का खतरा भी बढ़ता जाता है. फेफड़ों को होने वाला यह खतरा 18.5से कम बीएमआई वालों में सबसे कम, 18.5 से 25 यानी सामान्य बीएमआई वालों में थोड़ा अधिक और 25 से ज्यादा बीएमआई वालों में सबसे ज्यादा था.

तेजी से बदल रही है मनुष्य जाति : एक प्रजाति के रूप में मनुष्य तेजी से विकास कर रहा है. खोजकर्ताओं के मुताबिक उत्परिवर्तन की वर्तमान गति समूचे इतिहास में अब तक की सबसे तेज गति है. 60 लाख वर्ष पहले अपने पूर्वज चिम्पैंजियों से अलग होने के बाद मनुष्य पिछले 5,000 वर्षों के दौरान आनुवांशिक तौर पर 100 गुना तेजी से बदला है. अमेरिका की विस्कॉन्सिन यूनिवर्सिटी के वैज्ञानिकों के अनुसार दुनिया के अलग-अलग हिस्सों में बसने वाली इंसानी नस्लों के बीच आनुवांशिक अंतर भी तेजी से बढ़ रहा है. हालांकि उन्होंने यह संभावना भी जताई है कि यह अंतर जनसंख्या में हो रहे जातिगत अंतमिश्रण के कारण भविष्य में घट सकता है. अध्ययन दल के मुखिया तत्वशास्त्री प्रो.जॉन हॉक्स बताते हैं, 'यह आम धारणा सही नहीं है कि प्रकृति पर विजय हासिल कर लेने से मानव प्रजाति का विकास धीमा पड़ गया है. हमने प्रकृति को जीता नहीं बल्कि बदला है, और इसके कारण हम पर नए किस्म के चयन का दबाव पड़ रहा है.'

वैज्ञानिकों ने अपने शोध में मानव जीनोम के अंतर्राष्ट्रीय हेप्लोटाइप मैप (नक्शो) से प्राप्त आंकड़ों को विश्लेषण किया. उन्होंने चार समूहों-चीनी हान, जापानी, अफ्रीकी योरुबा और उत्तरी यूरोपीय नस्लों के 270 लोगों के जीन मार्करों को अपने अध्ययन का विषय बनाया. उन्होंने देखा कि मनुष्य की 7 फीसदी जीनों में आए बदलाव हाल-फिलहाल के हैं. इन बदलावों में उत्तरी यूरोपियों की त्वचा व नीली आंखों के रंग में हल्कापन, कुछ अफ्रीकियों में मलेरिया प्रतिरोधक क्षमता जैसे गुण प्रकट हुए हैं. प्रो. हॉक कहते हैं कि कई आनुवांशिक खूबियां मात्र 5,000 वर्ष पहले प्रकट हुई और आज ये 30 से 40 फीसदी आबादी में देखी जा सकती हैं. कई चीनी व अफ्रीकी अब दूध में मौजूद लैक्टोजन को बर्दाश्त नहीं कर पाते जबकि यूरोपियों में लैक्टोजन सह जीन अच्छी खासी आबादी में दिखाई देने लगे हैं. अध्ययनकर्ताओं के अनुसार मानव जनसंख्या विस्फोट ने भी आनुवांशिक विकास दर को तेज करने में खास भूमिका निभाई होगी. वे बताते हैं कि देर से परिवार बसाने की मौजूदा प्रवृत्ति भविष्य में आनुवांशक बदलावों का कारण बन सकती है. प्रो. हॉक कहते हैं, 'लोगों में बांझपन की समस्या बढ़ रही है, इसके कारण भविष्य में देरी से प्रजनन संभव बनाने वाले गुण की तरफ आनुवांशिक बदलाव के लिए दबाव बन सकता है.'

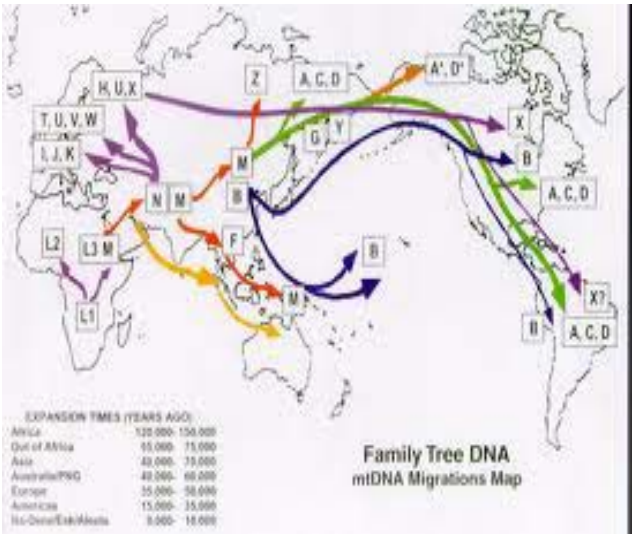

धूप (की सहायता) से तेल निकालने की कोशिश

धूप से पेट्रोल या डीजल बनाने की कोशिश पर शायद हर किसी को हंसी आए, लेकिन अविश्वनीय को कर दिखाना ही वैज्ञानिकों की असली फितरत है. अमेरिका की सैंडिया नेशनल लैबोरेटरी के वैज्ञानिकों ने ऐसी सोलर मशीन का प्रोटोटाइप तैयार किया है, जो सौर ऊर्जा की मदद से वायुमंडलीय कार्बन डाइऑक्साइड को पहले कार्बन मोनोऑक्साइड और फिर द्रव ईंधन में बदल देती है. वैज्ञानिकों ने अपनी इस मशीन को नाम दिया है - काउंटर रोटेटिंग रिंग रिसीवर रिएक्टर रीक्यूपरेटर यानी कम शब्दों में कहें तो सीआर-5.

संकलन - संजय गोस्वामी
एन.आर.बी., बी.ए.आर.सी., मुंबई-85

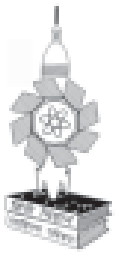

बुद्धि कौशल्य - (2)

यहां कुछ सरल समस्याएं आपके ध्यानाकर्षण के लिए प्रस्तुत हैं। आप इनके उत्तर हमें भेज सकते हैं। कम से कम तीन समस्याओं के शुद्ध उत्तर देने वाले पाठकों में से प्रथम दस के नाम वैज्ञानिक के अगले अंक में प्रकाशित किये जायेगें तथा सभी प्रश्नों के सही हल भेजनेवाले तीन प्रतियोगियों को पुरस्कृत भी किया जायेगा। उत्तर भेजनेवाले कृपया अपना स्पष्ट पता भी साथ में भेजें। अच्छा होगा यदि ये उत्तर हमें ई मेल द्वारा भेजे जाएं। सबंधित ई-मेल के पते नीचे दिए गए हैं । उत्तर प्राप्त होने की अंतिम तिथि 30 अप्रैल 2013 (सं.मं.)

1. रमेश अपने मित्र महेश के साथ जाकर बाजार से सामान खरीदता है. रमेश के पास जितना भी धन है, उसके आधे भाग से आटा, तिहाई भाग से दाल, चौथाई भाग से सब्जियां, और पाचवें भाग से मसाले खरीदता है. किन्तु सब सामान के लिए उसके पास का धन कम पड़ जाता है, अतः महेश से कुछ रूपया उधार लेकर सब सामान का बिल चुका देता है. आपको बताना है, कि यदि सब सामान रमेश ने पूर्णांक रूपयों में ही खरीदा हो तो उस के पास कम से कम कितने रूपये जेब में थे, साथ ही यह भी बताए की उसने महेश से कितने रूपये उधार लिए.

2. एक कार निश्चित गति से चलकर 60 किमी की दूरी तय करती है. यदि कार की गति को 20 किमी./घंटा से कम कर दें, तो इसी कार को उपरोक्त दूरी तय करने में आधा घंटा अतिरिक्त समय लगता है. आपको बताना है कि पहिली अवस्था में कार की गति कितने किलोमीटर प्रति घंटा थी?

3. राजेन्द्र के कुए से पंप द्वारा पानी निकाला जाता है. किंतु कुएं में पानी की आवक कम रहने से थोड़ी ही देर में पानी की सतह पंप के नीचे वाले पाइप के आखरी छोर तक पहुंच जाती है और पानी आना बंद हो जाता है. इस परेशानी से बचने के लिए राजेंद्र पंप के नीचे वाले पाइप को ही उसी आकार व व्यास वाले एक पर्याप्त लंबाई के नए पाईप से बदल देता है. जब फिरसे पंप चलता है तो कुछ घंटे तक तो पानी निकलता है, लेकिन बाद में पंप से पानी आना फिर से बंद हो जाता है, जबकि नीचेवाला पाईप पानी की सतह के अंदर गहराई तक डूबा हुआ ही रहता है. यदि मोटर और पंप सही स्थिति में कार्य कर रहे हों, तो क्या आप बता सकते हैं, कि पंप से पानी क्यों नहीं निकल पा रहा था?

4. चन्द्रमा पृथ्वी के केंद्र की परिक्रमा अर्थात पूरे 360^0 (अंश) का परिभ्रमण लगभग 27 दिन में पूरा कर लेता है, किन्तु चन्द्रमास (एक पूर्णिमा से दूसरी पूर्णिमा तक का समय अंतराल) की अवधि हमेशा 27 दिन से ज्यादा समय के अंतराल की ही होती है. क्या आप बता सकते हैं, ऐसा क्यों होता है?

5. व्हेल शायद पृथ्वी पर उपलब्ध सर्वाधिक विशाल आकार का प्राणी है, जो स्तनपायी वर्ग में आता है. समुद्र में एक व्हेल अपने अन्य सहयोगी से वार्तालाप या संकेत संप्रेषण आवाज (ध्वनि) लगाकर करती है. यह ध्वनि संकेत प्रेषण या श्रवण 500 किलोमीटर या इससे भी अधिक दूरी पर वे आसानी से कर होती है. क्या आप बता सकते हैं कि माध्यम (जल) का कौन सा गुण इस संवाद को संभव कराता है? ध्यान रहे पृथ्वी की सतह गोलाकार है और ध्वनि का गमन सीधी रेखा की दिशा में ही संभव है?

ईमेल :
skumar13d@gmail.com,
j.c.vyas@gmail.com

प्रस्तुति : डॉ.सुरेशकुमार
नाभिकीय भौतिक प्रभाग, भा.प.अ.के.

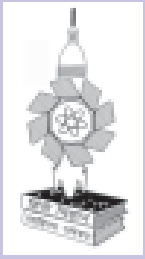

बुद्धि कौशल्य (1) कुछ प्रश्नों के समाधान

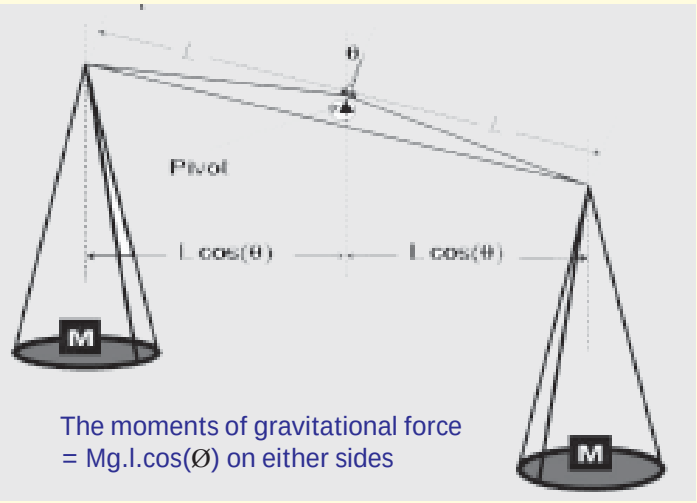

The moments of gravitational force
= Mg.l.cos(Ø) on either sides

प्रश्न (1) का समाधान : यह तराजू के मध्यस्थ फलक बिन्दू (जहां से उसकी दोनों ओर की भुजांए समान दूरी की रहती है और जिस पर तौलने की क्रिया संपन्न होती है.) तराजू के संहति केन्द्रक बिंदू से ठीक सीधे ऊपर या ठीक सीधे नीचे की ओर (फलक के डिजाइन के अनुसार) रखकर किया जाता है. स्पष्ट है कि संहति केन्द्रक बिंदु जब इस मध्य बिन्दू के ठीक नीचे या ऊपर आयेगा उसी स्थिति में तराजू स्थिर रह पायेगा.

प्र.(2) का समाधान : स्वचालित सीढ़ी व व्यक्ति दोनों की गतियां अलग-अलग किन्तु निश्चित मान की है.

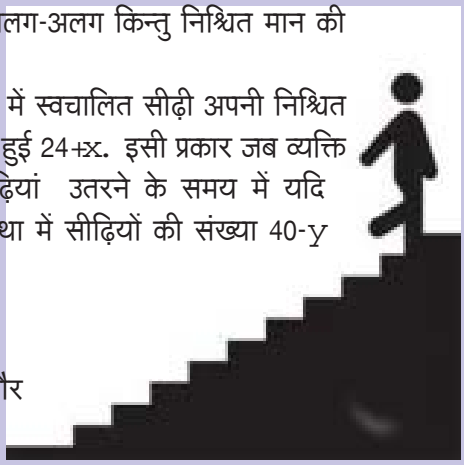

माना कि जितने समय में व्यक्ति 24 सीढ़ी चढ़ता है, उतने ही समय में स्वचालित सीढ़ी अपनी निश्चित गति से x सीढ़ियां आगे बढ़ जाती है. अर्थात् स्थिर अवस्था में कुल सीढ़ियां हुई $24+x$. इसी प्रकार जब व्यक्ति नीचे उतरता है, तब उसे 40 सीढ़ियां उतरनी पड़ती है. अतः 40 सीढ़ियां उतरने के समय में यदि स्वचालित सीढ़ी y सीढ़ियां ऊपर की और बढ़ जाती है तो स्थिर अवस्था में सीढ़ियों की संख्या $40-y$ होगी.

अर्थात $40-y = 24+x$

यानी $x+y = 16$

दूसरी शर्त में स्वचालित सीढ़ी व व्यक्ति की गति समान होने से x और y संख्याएं भी 24 और 40 के समानुपाती होना चाहिए.

अर्थात $(24/x) = (40/y)$

अथवा $3y = 5x$

इन दोनो समीकरणों को हल करने पर हम पाते हैं $x = 6$ और $y = 10$

अतः सीढ़ियों की संख्या 40 - 10 अथवा 24+6 अर्थात 30 होनी चाहिए.

प्र.(3) का समाधान : यहां ज़्यामिती और प्रकाशिकी दोनों को ध्यान में लाना पड़ेगा, और आपको क्रमशः समस्या का विश्लेषण करते हुए हल ढूंढना पढ़ेगा.

यदि घड़ी का सही समय 5.20 है तो दर्पण में यहीं समय 6:40 के जैसा प्रतिबिंबित होकर दिखाई देगा.

30 मिनट बाद यह समय 5:50 होगा, जो 6:30 के समय से 40 मि. पूर्व का समय होगा.

स्पष्ट है कि उसे 6:30 बजे ऑफिस पहुंचना था, जबकि वह 5:20 को ही 6:40 समझकर तेजी से घर से निकला था. ध्यान रहे यही स्थिति 11.20 बजे भी आ सकती है, जिसका प्रतिबिंब दर्पण में 12:40 दिखाई देगा, और 30 मिनट बाद यह समय 11:50 दिखायेगा, अतः सही समय का मान दो अलग-अलग समय के मानों के लिए संभव है जो क्रमशः 6:30 और 12:30 बजे का होगा. जबकि घर से निकलने का समय क्रमशः 5:20 और 11:20 बजे का होगा.

-संपादक मंडल

चित्रकूट में द्वि-दिवसीय राष्ट्रीय वैज्ञानिक संगोष्ठी

हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद एवं महात्मा गांधी ग्रामोदय विश्व विद्यालय,
चित्रकूट के संयुक्त तत्वावधान में आयोजित संगोष्ठी के दौरान संगोष्ठी पत्रिका के विमोचन का दृश्य

हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद, भाभा परमाणु केंद्र, मुंबई तथा महात्मा गांधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय, चित्रकूट के संयुक्त तत्वावधान में 02-03 फरवरी 2012 को 'नाभिकीय प्रौद्योगिकी व रसायन विज्ञान के जनहित अनुप्रयोग' विषय पर द्वि दिवसीय वैज्ञानिक संगोष्ठी आयोजित की गयी. परमाणु ऊर्जा के शांतिमय उपयोग तथा भारतीय परमाणु ऊर्जा कार्यक्रम के साथ-साथ रसायन विज्ञान के क्षेत्र में दर्ज प्रगति के समग्र पहलुओं पर गहन व सार्थक चर्चा हेतु आयोजित इस संगोष्ठी का उद्घाटन, मध्य प्रदेश सरकार के सचिव, (उच्च शिक्षा) डा.वी.एस.निरंजन ने किया. अपने मुख्य अतिथीय संबोधन में डा.निरंजन ने इस बात पर बल दिया कि वैज्ञानिक प्रगति समाज के हर तबके के लिए अति आवश्यक है, तथा विज्ञान विषयक जानकारी सभी लोगों तक पहुंचाना वैज्ञानिकों एवं शिक्षाविदों का महत्वपूर्ण दायित्व है. इस अवसर पर हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद के अध्यक्ष तथा भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र के उत्कृष्ट वैज्ञानिक डा.देवानंद शर्मा ने बताया कि देश की ऊर्जा आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए परमाणु ऊर्जा एक बेहतर विकल्प है. चिकित्सा, कृषि एवं खाद्य परिश्रम तथा मानव संसाधन के विकास में परमाणु ऊर्जा की भूमिका निरंतर अहम होती जा रही है. समारोह के अध्यक्ष एवं महात्मा गांधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय, चित्रकूट के कुलपति प्रो. कृष्ण बिहारी पांडेय ने अपने उदबोधन में कहा कि हमारा देश परमाणु ऊर्जा के शांतिपूर्ण उपयोग में अग्रणी व पूर्णरूपेण सक्षम है. सामाजिक उत्थान में परमाणु ऊर्जा व रसायन विज्ञान का उपयोग राष्ट्र के विकास का एक महत्वपूर्ण घटक है. इस अवसर पर 'विज्ञान पत्रिका' के प्रमुख संपादक व रसायनविद डॉ.शिवगोपाल मिश्र ने भी अपने विचार व्यक्त किए.

परमाणु ऊर्जा व इसके विविध उपयोगों के संबंध में तथ्यपरक जानकारी प्रदान करने तथा जनसाधारण की जिज्ञासाओं के निराकरण हेतु इस संगोष्ठी का आयोजन किया गया था. उक्त संगोष्ठी में प्रस्तुत वार्ताएं भारतीय परमाणु ऊर्जा कार्यक्रम के सभी उपक्रमों को निरुपित करने के साथ-साथ लोगों को जिज्ञासाओं का निराकरण करने में भी सार्थक रही.

वैज्ञानिक (त्रैमासिक)
RNI. No.:18862/70
दिल्ली, नयी दिल्ली, महाराष्ट्र, हिमाचल प्रदेश, राजस्थान व उ.प्र. के शिक्षा विभागों द्वारा स्कूलों व कॉलेजों के लिए स्वीकृत।

रचनाकारों से विशेष निवेदन

कृपया प्रकाशनार्थ पांडुलिपि तैयार करते समय संपादन की सुविधा के लिए निम्नलिखित निर्देशों का पालन करें :

1) (क) विभिक्तियों को शब्दों से अलग लिखा जाये - उदाहरण - 'राम ने', 'मेज पर', 'लड़कों को'
(ख) सर्वनामों की सभी विभक्तियों को मिलाकर लिखा जाये -

उदाहरण - 'उसने', 'मैंने', 'उनका', 'हमसे'

(ग) जिन सर्वनामों के अंत में 'ही' अथवा 'ई' लगा हो, उनकी विभक्तियों को अलग लिखा जाये -

2) पूर्वकालिक क्रियाओं के 'कर' को अलग लिखा जाये -

उदाहरण - ' जा कर', 'आ कर', अन्यथा 'कर' मिलाकर लिखें।

3) संयुक्त क्रियाओं में दोनों अंशों को अलग-अलग लिखा जाये -

उदाहरण - 'आ गया', 'चल पड़ा', 'हो सका'

4) जिन भूतकालिक कृदंत क्रियाओं अथवा विशेषणों का अंत 'या' से होता है, उनके स्त्रीलिंग और बहुवचन रूपों में 'य' का ही प्रयोग किया जाये - उदाहरण - 'गया, गयी, गये', 'नया, नयी, नये', 'आया, आयी, आये', 'लाया, लायी, लाये', 'पाया, पायी, पाये', 'खाया, खायी, खाये', 'किया, किये' आदि।

5) 'हुआ' जैसी जिन क्रियाओं के अंत में 'आ' है उनके स्त्रीलिंग 'हुई' व बहुवचन 'हुए' के अनुसार होना चाहिए।

6) 'लिये/लिए' : लिये को लिया का बहुवचन रूप मानें और 'लिए' को विभिक्ति चिन्ह।

'चाहिये/चाहिए' : 'चाहिए' ही लिखा जाये।

7) एसा/ऐसा'' : 'ऐसा' लिखा जाये ।

'दिखाई/दिखायी' : 'दिखाई' संज्ञा रूप मानें और 'दिखायी' भूतकालिक क्रिया (स्त्रीलिंग) । उदाहरण - ' सांप दिखाई पड़ा', 'मैंने उसे पुस्तक दिखायी' इसी प्रकार 'पढ़ाई' और 'पढ़ायी' में भी अंतर करें।

8) आदरार्थ आज्ञा रूपों में संभावनार्थक क्रियाओं में 'ए' ही लिखा जाये -

उदाहरण - 'आइए', 'खाइए', 'जाइए', 'समझिए, 'कीजिए' 'रखिए' आदि।

9) अनुस्वार और आनुनासिक ध्वनियां : 'संयुक्त व्यंजन' की अनुनासिक ध्वनि को 'अनुस्वार' के द्वारा दर्शाया जाना चाहिए -

वर्ग का प्रत्येक पंचम वर्ण यथा, ङ ('क' वर्ग), ञ ('च' वर्ग), ण ('ट' वर्ग), म ('प' वर्ग) तथा न ('त' वर्ग) अनुनासिक ध्वनियां हैं।

अनुस्वार स्थापन का नियम इस प्रकार है : जिस किसी अक्षर के आगे यदि उसी वर्ग की अनुनासिक ध्वनि है तो उसे अनुस्वार (बिंदी) से बदला जा सकता है :

उदाहरण - कंगन, अंक, व्यंजन, रंजन, ठंडा, डंडा, पंडित, कंपन, पंप, बंद, परंतु, किंतु, मृगांक, दंडित, संबंध, अंत आदि।

इस नियम का प्रयोग ध्यानपूर्वक करना चाहिए, अन्यथा अर्थ का अनर्थ भी हो सकता है। जन्म, मान्य, समन्वय, सम्मति आदि शब्द वैसे ही रहेंगे।

10) एकवचन से बहुवचन - 'या' से 'ये', 'ए' नहीं। जैसे, रुपया - रुपये, हंसिया-हंसिये (हंसिए आदारार्थ आज्ञा रूप होगा)

11) संस्कृत के जो शब्द हिंदी में तत्सम रूप से प्रचलित हैं, उनमें 'य' का व्यवहार उचित हैं. जैसे, अस्थायी, बाजपेयी,उत्तरदायी आदि। इन्हें अस्थाई, बाजपेयी, उत्तरदाई
लिखना न तो व्याकरण सम्मत है और न व्यावहारिक।

12)चंद्र-बिंदु का प्रयोग - छपाई की सुविधा के लिए चंद्र-बिंदु की जगह अनुस्वार का प्रयोग किया जाये। जैसे अंधा, आंख, अंगना, चांद, मां, पहुंचना, हां आदि।

13) संख्या को अरैबिक (अंग्रेजी) में लिखा जाये - **1, 2,3, 4, 5, 6, 7, 8, 9, 10**

♦ 'वैज्ञानिक' में लेखकों द्वारा व्यक्त विचारों से संपादन मंडल का सहमत होना आवश्यक नहीं है. ♦ 'वैज्ञानिक' में प्रकाशित समस्त सामग्री के सर्वाधिकार हिं.वि.सा.परिषद के पास सुरक्षित हैं. ♦ 'वैज्ञानिक' एवं हिं.वि.सा.परिषद से संबंधित सभी विवादों का निर्णय मुंबई के न्यायालय में ही होगा. ♦ 'वैज्ञानिक' में प्रकाशित सामग्री का आप बिना अनुमति लिए उपयोग कर सकते हैं. परंतु इस बात का उल्लेख करना अनिवार्य होगा कि अमुक सामग्री *'वैज्ञानिक' से साभार.*

हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद, भा.प.अ.केंद्र, ट्रांबे, मुंबई-85 के लिए **डॉ. जगदीश चंद्र व्यास** द्वारा संपादित एवं **श्री विपुल सेन** द्वारा निर्भय पथिक प्रकाशन (फोन : 24153784, 32201260) में मुद्रित व प्रकाशित ।